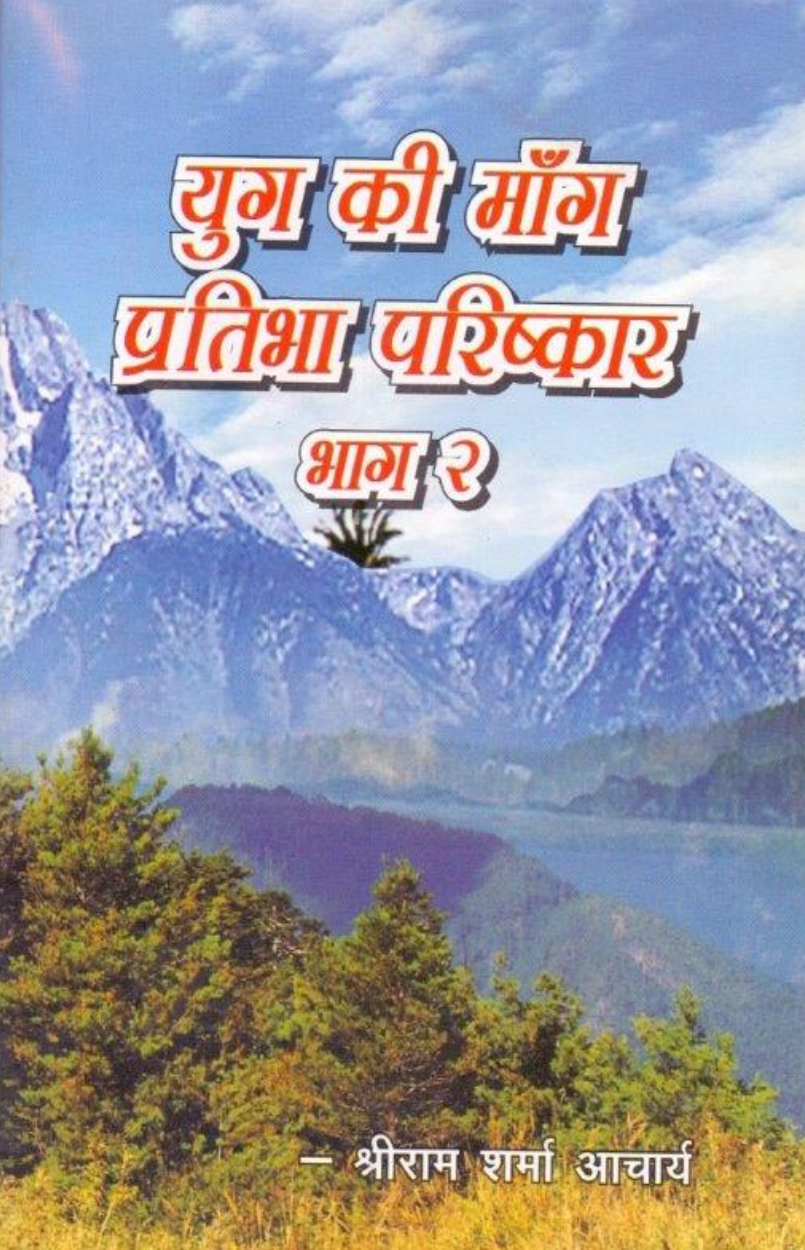
युग की माँग
प्रतिभा परिष्कार
भाग २
– श्रीराम शर्मा आचार्य

युग की माँग : प्रतिभा परिष्कार

(भाग-२)

लेखक

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १०.०० रुपये

सार-संक्षेप

बड़े कामों को बड़े शक्तिकेंद्र ही संपन्न कर सकते हैं । दलदल में फँसे हाथी को बलवान् हाथी ही खींचकर पार करा पाते हैं । पटरी से उतरे इंजन को समर्थ क्रेन ही उठाकर यथास्थान रखती है । उफनते समुद्र में नाव खेना साहसी नाविकों से ही बन पड़ता है । आज के समाज व संसार की बड़ी समस्याओं को हल करने के लिए स्रष्टा को भी वरिष्ठ स्तर की परिष्कृत प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ती है । प्रतिभाएँ ऐसी संपदाएँ हैं जिनसे न केवल वे स्वयं भरपूर श्रेय अर्जित करते हैं, वरन् अपने क्षेत्र-समुदाय और देश की अति विकट दीखने वाली उलझनों को भी सुलझाने में वे सफल होते हैं । इसी कारण इन्हें देवदूत-देवमानव-महापुरुष कहा जाता है ।

इन दिनों असंतुलन को संतुलन में बदलने के लिए महाकाल की एक बड़ी योजना बन रही है । यह कार्य आदर्शवादी सहायकों में उमंगों को उभारकर उन्हें एक सूत्र में आबद्ध करने से लेकर नियमित सृजनात्मक गतिविधियों-सत्प्रवृत्तियों का मोरचा अनीति-दुष्प्रवृत्ति के विरुद्ध खड़े करने के रूप में आरंभ हो चुका है । इससे वह महाजागरण की प्रक्रिया होगी जो प्रतिभाओं की मूर्च्छना हटाएगी, उन्हें एकाकी आगे बढ़ाकर अग्रगमन की क्षमता का प्रमाण देने हेतु प्रेरित करेगी । नवयुग का अरुणोदय निकट है । सतयुग की सुनिश्चित संभावनाएँ बन रही हैं । प्रतिभा के धनी ही इस लक्ष्य को पूरा कर दिखाएँगे ।

जीवनी शक्ति की दृश्य चमत्कृतियाँ

मोटर का ढाँचा लोहे का बना होता है । उसके पहियों में रबड़, सीटों पर रेगजीन, खिड़कियों में काँच आदि लगे होते हैं । यह बात सही होते हुए भी उसका दौड़ना, मुड़ना, पीछे हटना आदि उस अग्नि पर—विद्युत्शक्ति पर निर्भर रहता है; जो पेट्रोल, बैटरी, डायनेमो आदि के माध्यम से बनती है । उसकी भागदौड़ आदि में भी वही निमित्त कारण बनती है । पेट्रोल चुक जाए, बैटरी फ्यूज हो जाए, तो समझना चाहिए कि वह आकार में ज्यों-की-त्यों होते हुए भी हरकत में नहीं आ सकेगी । शरीर संरचना भी मोटर सदृश ही है । देखने में वह हाड़-मांस, रक्त, त्वचा आदि की बनी प्रतीत होती है, पर उसकी बाहरी और भीतरी हलचलें प्राणविद्युत् पर निर्भर रहती हैं ।

प्राण के तिरोहित हो जाने पर अच्छाखासा मोटा-तगड़ा शरीर भी देखते-देखते निर्जीव हो जाता है । धड़कन बंद हो जाने पर तत्काल मृत्यु हो जाती है और कुछ समय पहले तक जो शरीर प्रबल पुरुषार्थ दिखा रहा था, उसे जलाने या गाड़ने की आवश्यकता अनुभव की जाती है । उसकी अंत्येष्टि न की जाए तो थोड़े ही समय में वह अपने आप सड़ने और नष्ट होने का उपक्रम अपना लेता है । जो गिद्ध, चील, श्वान, शृगाल जीवित व्यक्ति से सर्वथा दूर रहते थे, वे गंध पाते ही दौड़ पड़ते हैं और लाश को तेजी से उदरस्थ कर जाते हैं ।

शरीर में बाहर से तो उसके हाथ-पैर, नाक, कान आदि काम करते दिखाई पड़ते हैं; पर वस्तुतः जीवन आंतरिक ऊर्जा पर निर्भर रहता है । अदृश्य ऊर्जा जीवनी शक्ति, चेतना, प्राणविद्युत् आदि नामों से जानी जाती है । वही जीवन की संचालिका और विभिन्न हलचलों की अधिष्ठात्री है । स्वास्थ्य संतुलन और पुरुषार्थ पराक्रम इसी पर निर्भर रहते हैं । वह बढ़ी-चढ़ी हो तो व्यक्ति एक-से-एक बढ़कर पराक्रम दिखा पाता है । परंतु यदि उसमें दुर्बलता, न्यूनता अथवा विकृति बढ़ने लगे तो शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोग भी व्यक्ति को देखते-देखते धर दबोचते हैं ।

चिकित्सक, रोग निवारण या दुर्बलता शमन के लिए अपने-अपने ढंग से निदान और उपचार करते हैं । वैद्य वात, पित्त, कफ को असंतुलन का कारण बताते हैं । हकीम उसको आदी, बादी, खादी प्रकृति के नाम से पुकारते हैं । होम्योपैथी में विष-से-विष का निवारण करते हैं । बायोकेमिक वाले अमुक लवणों की कमी को प्रधान कारण मानते हैं । क्रोमोपैथी में रंगों का असंतुलन मूल कारण है । एलोपैथी वाले विषाणुओं का आक्रमण बताते हैं । उपचार भी निदान के अनुरूप मारक या शामक ओषधियों द्वारा किया जाता है । परिणाम तत्काल जादू-चमत्कार दिखाने के अतिरिक्त और कुछ होता नहीं । इन दिनों प्रशिक्षित चिकित्सकों की भी बाढ़ आ रही है । अनुभव की दुहाई देने वाले अनगढ़ उपचारकों का तो कहना ही क्या ? सरकारी अस्पताल, प्राइवेट क्लीनिक, दवाखाने, अन्य उद्योगों की तुलना में अधिक तेजी से खुल रहे हैं । साथ ही रोगियों की संख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है, मानो अब दुनिया में सर्वथा नीरोग कहे जा सकने वाले व्यक्ति रह ही न गए हों ?

इलाज सभी करते हैं, पर कुछ दिन चमत्कार दिखाने के उपरांत सभी उपचार निरर्थक हो जाते हैं । मरीज एक से दूसरे चिकित्सक का दरवाजा खटखटाते मौत के दिन पूरे करता है । चिकित्सक भी इस स्थिति से प्रसन्न नहीं हैं । पुरानी दवाओं को कम महत्त्व की मानकर वे नई-नई दवाएँ खोजते और उनको नए आविष्कार कहकर उत्साह भरा ढिंढोरा पीटते रहते हैं । इतने पर भी ढाक के तीन पात ही रहते हैं । पर्यवेक्षणकर्त्ता एक स्वर से बताते हैं, कि रोगों की किस्में—नए रोगियों की संख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि चिकित्साक्षेत्र के अधिष्ठाता हतप्रभ हैं और अपनी पराजय को स्वीकार करने की अपेक्षा सशक्त विषाणुओं के तूफानी आक्रमण, मौसम परिवर्तन, रोगी के असंयम आदि के ऊपर दोष मढ़कर अपनी असफलता पर परदा डालने की प्रवंचना रचते रहते हैं ।

पुराने जमाने में बुखार, खाँसी, दस्त आदि सीमित रोग थे, पर अब तो उनका वर्गीकरण बढ़ी-चढ़ी रोग तालिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । उनकी विभीषिका भी बढ़ी-चढ़ी हैं । दमा, अल्सर, मधुमेह, उच्च रक्तचाप से लेकर एड्स और कैंसर जैसे भयानक रोगों का ज्वार बढ़ता जाता है । भाटा आने और उतार दीख पड़ने की प्रतीक्षा निराशा बनकर रह जाती है । कब्ज, जुकाम, अनिद्रा जैसे रोगों का तो कहना ही क्या ? वे तो नए फैशन के रूप में एक से अनेकों पर अपना आधिपत्य जमाते देखे जाते हैं । उपचारकर्त्ता, अपनी पराजय की झेंप मिटाने और रोजगार चलाने के लिए, बढ़-चढ़कर प्रशंसा करके उपचार-बचाव आदि का लबादा ओढ़ते रहते हैं, पर सच्चाई अपनी जगह पर अड़ी रहकर पूछती है कि चिकित्सा तंत्र जब तूफानी गति से बढ़ रहा है, तो सर्वसाधारण को आरोग्य रक्षा का आश्वासन क्यों नहीं मिलता ?

इस असमंजस के निवारण के लिए तनिक अधिक गहराई में उतरने की जरूरत है । खोजों का अंतिम निष्कर्ष आज या कल एक ही निकलने वाला है, कि मनुष्य की जीवनी शक्ति बेतरह घट रही है एवं वही स्थिति, व्याधियों को आमंत्रित कर रही है । यह स्थिति वस्तुतः दयनीय है । रोगी को अपराधी न कहा जाए, तो कम-से-कम अभागा तो कहा ही जाएगा । वह जीवन के वास्तविक लाभ, प्रगतिशीलता के रसास्वादन से प्रायः वंचित ही बना रहता है । स्थिति चिंताजनक है, विशेषतया तब, जब लोगों में से अधिकांश तीव्र या मंद शारीरिक रोगों से घिरे पाए जाते हैं ।

भीतरी जीवनी शक्ति की दुर्बलता, घटोत्तरी एवं विकृति को यदि दुर्बलता-क्षीणता, रुग्णता का प्रमुख कारण ठहराया जाए, तो यह उचित ही होगा । इन दिनों यही उपक्रम चल रहा है और आरोग्य की दृष्टि से लोग दिन-दिन दुर्बल बनते जाते हैं । अस्वस्थता आज की सबसे बड़ी समस्या है । उसके कारण पुरुषार्थ, प्रगति करने के सत्परिणाम उपलब्ध

कर सकना कठिन पड़ता है । जो स्वयं दूसरों की सहायता चाहता है, जो स्वावलम्बन तक सँजो नहीं पाता, तो वह प्रगति कैसे करेगा ?

यह सत्य कोई समझे या न समझे, पर जीवट की कमी एक ऐसी विडंबना है, कि जिसके कारण मनुष्य जीवित रहते हुए भी, एक प्रकार से पूर्ण मृतक नहीं तो अर्द्ध-मृतक जैसा तो निश्चित रूप से बनकर ही रहता है । शरीर देखने में सही होते हुए भी निर्जीव-निस्तेज; मस्तिष्क शिक्षित होते हुए भी कठिनाइयों से उबर पाने में असमर्थ और प्रगति की इच्छा-चेष्टा करते हुए भी असफल रहता है । इसके पीछे एक ही व्यवधान काम करता है कि उस ऊर्जा का अनुपात एवं स्तर घटा हुआ रहता है, जो प्रसन्नता, प्रफुल्लता, समर्थता और सफलता की जन्मदात्री है । शरीर की कमजोरी, बीमारी, निराशा, उद्विग्नता के प्रत्यक्ष कारण जो भी हों, पर वास्तविकता यह है कि जीवट घट जाने की ही यह समस्त परिणतियाँ हैं । जब तक मूल कारण को समझा और उसका निराकरण न किया जाएगा, तब तक शरीरक्षेत्र की दुर्बलता से लेकर मानसिक खिन्नता, विपन्नता तक से छुटकारा पा सकना संभव न हो सकेगा । थोड़ी देर के लिए उन्हें झुठलाकर मन बहला लिया जाए तो यह दूसरी बात है ।

जीवन शरीर और मन तक ही सीमित नहीं है, उसमें पग-पग पर अवरोधों से जूझना भी पड़ता है और अपने ढंग से अपनी प्रगति के लिए रास्ता खुद ही बनाना पड़ता है । इसके लिए अभीष्ट शक्ति-सामर्थ्य न हो तो कुछ करते-धरते ही नहीं बन पड़ता । किंकर्त्तव्यविमूढ़-हतप्रभ की तरह ज्यों-का-त्यों खड़ा रह जाना पड़ता है । साँस तो लुहार की धौंकनी भी लेती रहती है । अनाज खाने और आटा नीचे निकाल देने का ढर्रा तो चक्की भी घुमाती है । कोल्हू का बैल भी किसी प्रकार पिलने और पेलने में लगा रहता है । भूत-पलीत मरघट में रहकर, एकाकी डरने-डराने का जाल-जंजाल बुनते रहते हैं, पर यह सब मनुष्य जैसे असाधारण शक्तिसंपन्न, सृष्टि का मुकुटमणि कहलाने वालों को शोभा

नहीं देता । उसे कुछ ऐसा करना चाहिए जिसके साथ उठने और उठाने की, बढ़ने और बढ़ाने की प्रक्रिया जुड़ी हुई हो, जिसे अनुकरणीय और अभिनंदनीय होने का सुयोग, सौभाग्य और सम्मान मिल सके । पर ऐसी प्रगतिशीलता किसी भी क्षेत्र में मिल तभी सकती है, जब आंतरिक ऊर्जा साथ दे । जीवट की परिणति ओजस्, तेजस् और वर्चस् में हो और उनके विकसित होने की व्यवस्था बन पड़े ।

मानवीय सत्ता के तीन पक्ष हैं—शरीर, मस्तिष्क और अंतःकरण । इन्हीं को स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर कहते हैं । इनमें काम करने वाली जीवट को ही प्राणाग्नि, लोगोस, बायो इलेक्ट्रीसीटी, जीवनी शक्ति, विद्युत् चेतना आदि नामों से जाना जाता है । यही क्रमशः ओजस्, तेजस् और वर्चस् कहलाते हैं । उनका सामान्य संतुलन आरोग्य के नाम से जाना जाता है । इसे सही स्थिति में रखे रखना ही स्वास्थ्य रक्षा, समर्थता, बलिष्ठता आदि नामों से जाना जाता है । आंतरिक स्तर पर उसका सुनियोजन ही प्रतिभा के रूप में प्रकट होता है । इसे गिरा देना, सँभाले रखना या प्रखर बनाना, पूर्णतया मनुष्य के अपने हाथ में है । यह प्रक्रिया किसी बाहरी सहायता पर निर्भर नहीं होती । भाग्य, आनुवांशिकी, शाप या वरदान इसमें हस्तक्षेप नहीं कर पाते । पिछला कर्म आज के भाग्य के रूप में सुख-दुःख भर दे सकता है । प्रतिभावान् दुःख को भी विकास का आधार बना लेते हैं तथा प्रमादी सुख को भी पतन का कारण बना लेते हैं । जीवट प्राणाग्नि के विकास की प्रक्रिया हर स्थिति में चलती रह सकती है ।

आरोग्य का उद्गम यही है । नस-नाड़ियों, मांसपेशियों, जीव कोषों में इसी का प्रभाव काम करता देखा जाता है । रोग निरोधक शक्ति यही है । इसी को टॉनिक के समतुल्य बलवर्धक स्थिति में देखा जाता है । मस्तिष्क में बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता इसी के चमत्कार हैं । वरिष्ठों, साहसियों, वैज्ञानिकों, कलाकारों एवं विशिष्टजनों में इसी शक्ति को काम करते देखा जा सकता है । अन्तःकरण में

भाव-संवेदनाओं के रूप में भी इसी को देखा जाता है । करुणा, सहिष्णुता और आदर्शवादी सराहनीय कृत्यों में इसी की गरिमा का परिचय मिलता है । यह शरीर में कम मात्रा में हो, तो समझना चाहिए कि व्यक्ति आए दिन बीमार पड़ेगा और अशक्तता से घिरा हुआ अपने आपको दुर्बल, पीड़ित एवं आधि-व्याधियों से घिरी स्थिति में अनुभव करता और कराहता रहेगा ।

मस्तिष्क में इसका अनुपात कम हो तो उसे अस्त-व्यस्त, अनगढ़, असभ्य, अर्द्ध-विक्षिप्त, हलके स्तर का समझा जाएगा । ओंधे-सीधे स्वभाव के कारण वह गलतियों, गलतफहमियों का शिकार रहेगा । ऐसा कुछ करते कहते देखा जाएगा, जो सभ्यजनों को शोभा नहीं देता । अंतःकरण की दृष्टि से हेय स्तर वाले निष्ठुर, निर्मम, नीरस, स्वार्थी और पतित स्तर के आचरण करते और उपहास-अपमान सहते दिखाई देते हैं । जिनमें यह प्राण संपदा जितनी कम है, उन्हें उसी अनुपात में दीन-हीन, पिछड़ा, दरिद्री एवं अभावग्रस्त माना जाता है ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि हम प्रत्यक्ष कलेवर को देखते हैं । उसके पीछे काम करने वाली अदृश्य सामर्थ्य का न मूल्यांकन कर पाते हैं और न महत्त्व ही समझ पाते हैं । मांसपेशियों की पुष्टाई देखी जाती है, पर यह भुला दिया जाता है कि बिजली ही वह शक्तिपुंज है, जो अनेक उपकरणों को चलाती और जलाती है । बिजली की धारा न बह रही हो तो बल्ब, पंखे, हीटर, कूलर आदि कितने ही सुंदर या महँगे क्यों न हों, वे अपना काम ठीक प्रकार से नहीं कर सकते । इसी प्रकार जीवट की संजीवनी के कम पड़ जाने पर शरीर, मन, अंतःकरण सभी गड़बड़ा जाते हैं । विशेषतया स्वास्थ्य तो चौपट हो ही जाता है, जैसा कि आजकल सर्वत्र दिखाई पड़ता है ।

❑

मनोबल की प्रचंड शक्ति एवं उसकी परिणति

घटना सन् १६८१ की है । इंग्लैंड की पैट्रिक मेरी नामक एक महिला के सीने में कैंसर हुआ । पता तब चला, जब डॉक्टरों ने जाँच पड़ताल के उपरांत यह बताया कि उसका कैंसर सीने से बढ़कर सारी काया में फैल चुका है । इलाज तो चिह्न-पूजा है, पर वह अधिक से अधिक छः महीने और जीवित रह सकेगी । महिला चिंतित हुई । उसने पूछा—क्या इसका उपचार नहीं हो सकता ? डॉक्टरों ने सीधा-सा उत्तर दिया कि आपकी जाँच-पड़ताल कुछ महीने पहले हो सकी होती और समय रहते वस्तुस्थिति का पता चल गया होता, तो यह संभव था कि समय रहते इलाज हुआ होता और आपके प्राण बच सके होते । पहले जाँच-पड़ताल क्यों नहीं हो सकी ? इसका कारण एक ही था कि इंग्लैंड में उस समय ऐसी परीक्षा मशीन जिसे 'कैट स्कैनिंग' नाम से जाना जाता है, एक ही थी, जिस पर जाँच कराने के लिए, अपनी पारी के लिए मरीजों को लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी । तब तक बात बढ़कर कहीं-से-कहीं जा पहुँचती थी । पैट्रिक मेरी भी इसी प्रतीक्षा में असाध्य स्तर तक जा पहुँची ।

महिला ने विचार किया कि जब मात्र छः महीने ही जीना है, तो इस समय का श्रेष्ठतम उपयोग क्यों न कर लिया जाए ? सोचते-सोचते वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि मेरी हैसियत तो ऐसी नहीं है कि ऐसी अनेकों मशीनें देश में लगा सकूँ, पर इतना तो हो ही सकता है कि यदि पूरी शक्ति इसी कार्य में झोंक दी जाए, तो एक के स्थान पर दो तो हो ही जाएँ और आधे रोगियों के तो प्राण बच ही जाएँ । उन दिनों ऐसी एक मशीन प्रायः तीन करोड़ रुपयों में बनती थी ।

पैट्रिक ने सांगोपांग योजना बनाई । उस देश के टेलीविजन पर अपनी स्थिति, दुर्दशा और संभावना प्रसारित की और साथ ही यह भी कहा कि यदि तीन करोड़ रुपयों का प्रबन्ध हो जाए, तो दूसरी मशीन

कुछ ही दिनों में लग सकती है तथा मेरे जैसे आधी संख्या के रोगियों के प्राण बच सकते हैं । उस प्रसारण को सुनकर बहुत से उदारचेता प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी श्रद्धानुसार राशि भेजनी शुरू कर दी । महिला का हौसला बढ़ा और उसने इसी का सरंजाम जुटाने में अपना सारा समय और मनोयोग लगा दिया । फलतः नियत अवधि में दूसरी मशीन बननी चालू होने के लिए स्थानीय जाँच कर्त्ताओं की सारी व्यवस्था जुट गई । कार्य आरंभ हो गया । इस बीच उसकी तत्परता और तन्मयता ऐसी रही, जिसमें उसे अपनी बीमारी और चिकित्सा की चिंता ही न रही और अपने लिए जो सोचना-करना था, उसे भुलाए ही रही ।

संकल्पित काम से निपटने के बाद साथियों के याद दिलाए जाने पर वह फिर डॉक्टरों के पास अपनी जाँच-पड़ताल कराने गई कि अब छः महीने शेष वाली जिंदगी किस स्थिति में है ? डॉक्टरों ने उसका सारा शरीर जाँच डाला, पर उसमें कहीं कैंसर का नाम-निशान न था । यह हर दृष्टि से भली-चंगी थी । इस आश्चर्यजनक कायाकल्प का कारण खोजने के लिए विभिन्न स्तर के विशेषज्ञों की समिति बिठाई गयी । उसने लंबे अन्वेषण के बाद एक ही प्रतिवेदन प्रस्तुत किया; कि यदि मनुष्य अपना मनोबल मौत, बुढ़ापा बीमारी आदि को भुलाकर उच्चस्तरीय परमार्थ में लगा दे, तो उनके स्थान पर स्वस्थता संपन्न करने वाली सामर्थ्य उभर सकती है ।

यह घटना एक उदाहरण है, जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रोग निरोधक शक्ति जितनी ओषधियों में, शल्य क्रियाओं और चिकित्सकों के कौशल में समाहित है, उससे अनेक गुनी सामर्थ्य व्यक्ति के अपने मनोबल में सन्निहित है; बशर्ते कि उसे उभारा जा सके । अचिंत्य-चिंतन के स्थान पर न केवल संकल्पशक्ति को बढ़ाया और अभीष्ट उद्देश्य के लिए मोड़ा जाए, वरन् ध्यान को परमार्थ प्रयोजनों में लगाकर, नवजीवन को अपने ही अनंत शक्तिभंडार में से उत्पन्न एवं विकसित किया जा सके ।

ऐसी घटनाएँ एक नहीं, अनेक हैं । फ्लोरेंस की एक महिला उन दिनों नवयुवती थी । उसकी मँगनी हो चुकी थी । विवाह होने ही वाला था कि पति परदेश चला गया और उसे लौटने में प्रायः बीस वर्ष लग गए । फिर भी वह निराश न हुई और सोचती रही कि जब विवाह हो, तो उसका शरीर नवयुवती जैसा ही दृष्टिगोचर होना चाहिए । वह दिन में कई-कई बार अपना मुँह दर्पण में देखती और विश्वास करती कि उसका यौवन घट नहीं रहा, वरन् दिन-पर-दिन अधिक निखर रहा है । बीस वर्ष बीत गए । तब वह चालीस वर्ष की हो चुकी थी, जबकि उसका मंगेतर बीस वर्ष बाद लौटा । मिलने पर प्रेमिका का रूप लावण्य देखकर वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ । दोनों का विवाह हो गया । वे सुखपूर्वक जिए । इस घटना में 'संकल्पशक्ति' का ही चमत्कार है ।

पुराणों में ऐसी घटनाओं का विस्तारपूर्वक बढ़ी-चढ़ी संख्या में वर्णन है । हनुमान्, सुग्रीव के एक साधारण कर्मचारी थे । उनके सामने सीता की वापसी वाले संदर्भ में समुद्र पार करने का प्रश्न आया । वे अपनी सीमित शक्ति को देखते हुए वैसा कर सकने में अपने को असमर्थ पा रहे थे; पर जामवंत ने जब उन्हें प्रोत्साहित किया और प्रसुप्त शक्तियों के जाग्रत् होने पर कुछ भी कर सकने का स्मरण दिलाया, तभी वे असंभव को संभव कर दिखाने के लिए तत्पर हो गए ।

भारत का अध्यात्म 'तत्त्वज्ञान' और 'योगसाधना' विज्ञान विश्व भर में विख्यात है । उसे मनुष्य में देवत्व का उदय करने में सर्वथा समर्थ माना जाता है । ऐसे अगणित प्रमाण-उदाहरण भी हैं । शाप-वरदान देने की शक्ति और ऋद्धि-सिद्धियों का परिचय देने का प्रसंग अगणित उदाहरणों समेत इतिहास प्रसिद्ध है । पिछली शताब्दियों में भौतिक विज्ञान के आविष्कार ने संसार भर को चमत्कृत एवं विस्मित किया है । भारत की अपनी विशेषता अनादि काल से विकसित रही है । उसके आधार पर ऋषि-मुनियों और महामानवों का इतना बड़ा परिकर उभरता रहा है, जिसने न केवल अपने देश को, वरन् संपर्क में आने वाले सुविस्तृत

परिकर को इतना समुन्नत बनाया, जिसे धरती पर स्वर्ग के अवतरण की संज्ञा दी जा सके ।

मनस्वी कौंडिय ने, मध्यपूर्व के सुविस्तृत क्षेत्र में ऐसा प्रचलन-प्रवाह उत्पन्न किया, कि वह समूचा विशालकाय क्षेत्र न केवल हर दृष्टि से समुन्नत हुआ, वरन् एक प्रकार से भारत का सांस्कृतिक उपनिवेश ही बन गया । कुमारजीव की कथा-गाथा हर किसी के लिए अभी भी प्रकाश स्तंभ का काम करती है । वह बिहार प्रांत के एक निर्धन परिवार में जन्मा और पैदल चलकर, कश्मीर के उत्तरी छोर पर बसे तक्षशिला के विश्वविद्यालय में पढ़ा । इसी बीच उसकी दृष्टि चीन के विशालकाय क्षेत्र पर गई और उसे हिन्दू धर्म की बौद्धशाखा का अनुयायी बनाने की ठानी । साधनों का अभाव रहते हुए भी, वह गोबी के दलदली पठार और खोतान के सुविस्तृत रेगिस्तान को पार करते हुए, प्राणों की बाजी लगाकर चीन जा पहुँचा । भाषा और संस्कृति के अपरिचय की कठिनाई को पार किया और वहाँ का ऐसा मूर्द्धन्य धर्म प्रचारक बना कि न केवल चीन वरन् उसके समीवर्ती साइबेरिया, कोरिया, जापान आदि को भी अपनी संस्कृति का अनुगामी बनाने में सफल हुआ । सहयोगी-अनुयायी तो प्रतिभाशालियों को हर भले-बुरे काम में मिल जाते हैं, पर श्रेय उन्हीं प्रतिभाशालियों को जाता है; जो तूफान की तरह उठते और अपने साथ कूड़े-करकट तक को उछालते हुए आसमान तक पहुँचाते हैं ।

नेपोलियन का कहना था कि असंभव शब्द मूर्खों के कोष में है । आल्पस पर्वत जैसे दुर्गम अवरोध को उसने जब पार करने की ठानी, तो प्रश्न सामने आया कि अब तक कोई उसे पार नहीं कर सका, सभी महत्त्वाकांक्षी उसी अवरोध में उलझकर अपनी हस्ती गँवा बैठे, तो उसके लिए ही कैसे संभव हो सकता था कि दूसरे छोर तक पहुँच सके ? उसके संकल्प ने आश्वासन दिया कि आल्पस को नेपोलियन के लिए मार्ग देना ही पड़ेगा । हुआ भी ऐसा ही ।

चाणक्य एक साधारण ब्राह्मण मात्र था; पर उसने अपने अपमान के प्रतिशोध में नंद वंश की ईंट-से-ईंट बजा दी । एक मोरचा पूरा हुआ तो भी वह चैन से न बैठा और निश्चय किया कि भारत पर आए दिन होते रहने वाले आक्रमण को वहाँ से उखाड़ फेंकना है, जहाँ उनकी जड़ें बार-बार हरी होतीं और अपने चमत्कार दिखाती हैं । उसने अपनी दिव्यदृष्टि से चंद्रगुप्त को चुना और इस बात के लिए तैयार किया कि वह निरंतर युद्धरत रहकर आक्रांताओं के आतंकवाद को जड़मूल से उखाड़ फेंके । चंद्रगुप्त अचकचा रहा था और इस प्रयास में आने वाली असंख्य कठिनाइयों को विस्तारपूर्वक सुना और गिना रहा था । सुनने के बाद चाणक्य ने व्यंग्योक्ति कसते हुए भवें तानकर कहा—"तुम दासी पुत्र हो, अपनी सहज भीरुता और जड़ता की अभिव्यक्ति कर रहे हो । तुम्हें समझना चाहिए कि मैं चाणक्य हूँ । चाणक्य जो सोचता है, वह क्रियान्वित भी होता है और इतना ही नहीं, वह फलित होकर भी रहता है । तुम बकवास मत करो । जो कहा जा रहा है, उसे निमित्त बन कर करो और गाँठ बाँध लो कि चाणक्य निरर्थक योजनाएँ नहीं बनाता और न उसके कभी असफल रहने की आशंका ही आड़े आती है ।" चंद्रगुप्त नत मस्तक हो गया । उसने अक्षरशः अनुशासन पाला और वह कर दिखाया, जिसे उसके पूर्ववर्ती असंभव मानकर चुप बैठे रहते और मन-ही-मन कुड़कुड़ाते रहते थे ।

भारत का एक पुरातन विज्ञान चेतना विज्ञान है, जिसे योगसाधना, तपश्चर्या आदि के नाम से जाना जाता है । उसके फलस्वरूप उपलब्ध हो सकने वाली ऋद्धि-सिद्धियों से पुराण गाथाओं का पन्ना भरा है । यह योगाभ्यास आखिर है क्या ? इसकी गहराई तक उतरने वाले जानते हैं कि यह तितीक्षाओं के साथ जुड़ी हुई कर्मकाण्डों की प्रत्यक्ष फलश्रुति प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः मनोबल को उभारने और प्रसुप्त प्राणाग्नि को प्रज्वलित करने की प्रक्रिया मात्र है । देवशक्तियों का केंद्रबिंदु वही है । वृक्ष पर फल-फूल आकाश से टपककर चिपकते रहने की बात

सोचने वाले वस्तुतः गलती पर होते हैं । जड़ों के द्वारा खींचा गया धरती का रस ही तने को मजबूत करता है; पल्लवों को हरियाली और वृक्षों को सुविस्तृत छायादार बनाकर उन्हें फल-फूलों से लाद देता है । उसी जीवट के आधार पर वे आँधी-तूफानों से लड़ते और अपनी जगह अकड़ कर चिरकाल तक खड़े रहते हैं । सिद्धपुरुष अभीष्ट प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचते हैं । महापुरुषों की सफलताएँ पुरुषों को धिक्कारती और विजयश्री वरण कर सकने की शिक्षा प्रत्यक्ष प्रमाण बनकर देती हैं । उनसे उत्साहित होकर कभी-कभी तो अर्द्ध-मृत और अर्द्ध-मूर्च्छित भी देवमानवों जैसे पुरुषार्थ करके दिखाने लगते हैं ।

शरीर ही इन दिनों आराध्य देव बना हुआ है । उसे बलिष्ठ और मजबूत बनाने में मनुष्य की तीन-चौथाई क्षमता का नियोजन होता रहता है । इतने पर भी सज्जा, उपकरण, बहुमूल्य आहार, ओषधियों के पिटारे कुछ काम नहीं आते । अमीर, गरीबों की अपेक्षा अधिक दुर्बल, बीमार और अल्पजीवी पाए जाते हैं । चिकित्सा के व्यवसायी अपने परिवार समेत स्वयं तक बीमारियों के शिकार बने रहते और तथाकथित आहार विज्ञान से लेकर ओषधि विडंबना को प्रत्यक्ष न सही, मन-ही-मन तो कोसते ही रहते हैं ।

मनोबल इससे सर्वथा भिन्न प्रकार की राह दिखाता है । अफ्रीका के मसाई मात्र भालों के सहारे बबर शेरों से भिड़ते और उन्हें मारकर अपनी शादी के लिए निश्चित शर्त को पीढ़ी-दर-पीढ़ी पूरी करते रहते हैं । विश्वविख्यात सेंडो पहलवान जवानी की दहलीज पर पहुँचने तक हड्डियों का ढाँचा और जुकाम के जाल में पूरी तरह जकड़ा हुआ था । पर जब उसके मार्गदर्शक ने जीवन की नई विधा सुझाई तो वह दिन-पर-दिन स्वस्थ बलिष्ठ होता गया और एक दिन वह संसार का माना हुआ पहलवान बन गया । भारत का हिंद केशरी उपाधि वाला चंदगी राम अध्यापक की नौकरी करने के दिनों तक तपेदिक का मरीज था और उसकी छूत न लग जाने के भय से हर कोई दूर रहता था, पर जब उसने अपना मानसिक कायाकल्प साहसपूर्वक कर डाला, आदतों को पूरी तरह

उलट दिया तो प्रकृति देवी ने उस पर अजस्र वरदान बरसाया और हिंदुस्तान का जाना माना पहलवान बना दिया ।

प्राचीनकाल में ऐसे कथा-कृत्यों की कथा-गाथाएँ अपने स्थान पर विचित्र हैं । मिट्टी के टीले बनाकर किसी प्रकार साँसें गिनते रहने वाले च्यवन ऋषि ने जब अपने दृष्टिकोण और पुरुषार्थ को दूसरी दिशा में मोड़ दिया तो अश्विनी कुमार वैद्य भी अपनी दवाओं का पिटारा लेकर दौड़े आए और उन्हें बूढ़े से जवान बना दिया । जिनका दम निकलने की प्रतीक्षा में स्वादिष्ट भोजन पाने के लिए लोमड़ियाँ चक्कर काटती रहती हैं उन्हीं की सेवा-सहायता करने के लिए सुकन्या जैसी अनिंद्य सुंदरी राजकुमारी प्राणपण से जुट गई । ययाति के बूढ़े से जवान हो जाने की कथा प्रसिद्ध है । हनुमान् बचपन से ही पवनपुत्र प्राणपुंज कहलाते थे और उनके पहाड़ पर गिरने से विशालकाय शिला चूर-चूर हो गई थी । पार्वती की युगों तक तप करने से क्षीण हुई काया शिव को वरण करते ही त्रैलोक्य मोहिनी बन गई थी । अर्जुन के बाणों ने पाताल से जलधारा उभारकर मरणासन्न भीष्म पितामह को ताजा जल पिलाया था । टिटहरी का समुद्र को सुखाकर अंडे वापस लेने का संकल्प भले ही अगस्त्य के माध्यम से पूरा हुआ हो, पर वह अधूरा तो नहीं ही रहा ।

जमदग्नि का पुत्र परशुराम जब पिता के साथ हुए अनाचार का बदला लेने के लिए उतारू हो गया तो उसने महाबली सहस्रबाहु की हजारों भुजाएँ हलके से फरसे से मूली की तरह काटकर रख दीं और मचला तो उसके सहयोगियों तक का सफाया करके रख दिया । हारी-हारी बातें करने वाले अर्जुन को महाभारत का विजेता बनाने का श्रेय कृष्ण के उस उद्बोधन को था जिसने भर्त्सना की लताड़ और प्रोत्साहन भरी पुचकार देकर उसे वह बना दिया जिसका उसे भान तक न था ।

इन दिनों मनुष्य को वैभव, स्वास्थ्य और यश के अतिरिक्त और किसी की कामना दीख नहीं पड़ती । इसके लिए जो कुछ उचित और अनुचित बन पड़ता है, उसे कमाने में औसत आदमी दिन-रात जुटा

रहता है । कुछ मिलता भी है, तो कुमार्ग के रास्ते देखते-देखते न जाने कहाँ उड़ जाता है । इस घोर असमंजस की वेला में हर किसी को यह समझना और समझाना चाहिए कि अगणित वैभवों का उद्गम वह प्राणाग्नि केंद्र है जिसको उभारना हमारा परम पुरुषार्थ और ईश्वर का एकमात्र अनुग्रह कहा जा रहा है । आज इसी की आवश्यकता है कि वैभव स्थिर रहे और दिन-पर-दिन बढ़ता रहे और अंततः उस श्रेष्ठतम् सदुपयोग में काम आ सके जो नन्हे से बीज से बढ़कर अत्यंत विशालकाय वटवृक्ष के रूप में परिणत होगा ।

वैभव सुदामा ने, नरसी मेहता ने, सुग्रीव ने, विभीषण ने दैवी अनुग्रह से इतनी मात्रा में पाया था, जो इतिहास प्रसिद्ध हो गया । स्वस्थ पराक्रमों में पांडवों की गणना की जा सकती है जो मनुष्य के नहीं देवताओं के वंशज थे । ध्रुव और प्रह्लाद ने जो उच्चपद पाए थे वे किन्हीं विरले को ही कभी प्राप्त हुए होंगे । सप्त ऋषि अमर हो गए । नारद को भगवान् के लोक में चाहे जब आ धमकने की छूट मिली ।

वैभव किसका है ? पराक्रम किसका है ? विभूतियाँ किसकी हैं ? इन सबका उत्तर देते समय नाम भगवान् का ही लिया जा सकता है, पर भगवान् का निकटतम और सुनिश्चित स्थान एक ही है—अंतराल में विद्यमान प्राणाग्नि । उसी को जानने-उभारने से वह सब कुछ मिल सकता है जिसे धारण कर सकने की पात्रता मनुष्य ने अर्जित कर ली है । मेघमाला द्वारा समय-समय पर बरसने वाली अजस्र जलधारा का जल उन्हीं जलाशयों में एकत्र होता है जो उसे संचय के लिए समुचित गहराई और पात्रता अर्जितकर सकने में समर्थ हो सकें । आकांक्षा ऋद्धि-सिद्धियों की हो या स्वर्गमुक्ति की, इन्हें प्राप्त करने के लिए उस प्राणाग्नि को प्रज्जवलित किया जाना अनिवार्य है, जो दैवी शक्तियों का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करती है ।

❑

आत्मबल ही सर्वोपरि

भारत इस समस्त धरातल के हर क्षेत्र में, अपने ढंग की अनोखी प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है । उसकी महानता, समृद्धि, उदारता, विविधता, जन-जन के लिए आश्चर्य का विषय रही है । संसार उसके प्रति भावभरी श्रद्धांजलि अनेकों प्रकार से प्रस्तुत करता रहा है । ज्ञान और मार्गदर्शन का प्रकाश दे सकने की विशेषता के अनुरूप उसे जगद्गुरु कहा जाता रहा है । कहा है शासन सुव्यवस्था और प्रगति के व्यापक सरंजाम जुटा सकने की विशेषता के कारण उसके नेतृत्व को चक्रवर्ती की संज्ञा दी गई । जो दरिद्रों को संपन्न बना सके उसकी संपन्नता पर कौन संदेह करेगा ? यही कारण है कि उसे सोने की चिड़िया और रत्नों की खदान के नाम से पहचाना जाता रहा । स्वर्ग संपदाओं के स्वामी भारतवर्ष की, साधनों के सदुपयोग से उत्पन्न होने वाली सुसंपन्नता ही व्यावहारिक समझी गई । भले ही यहाँ के लोग व्यावहारिक स्तर पर औसत नागरिकों जैसा जीवनयापन ही क्यों न करते रहे हों ?

भारत की अपनी सांस्कृतिक परंपराएँ इतनी उत्कृष्ट और इतनी सशक्त रही हैं, कि नर-वानर का जीवन जीने वाले अनगढ़ लोग यह कल्पना तक न कर सके कि कोई अपनी निजी प्रतिभा को परिष्कृत करके, दूसरों की तुलना में असंख्य गुना वनजदार भी बन सकता है । बात समझ में न आने से यह मानकर संतोष करना पड़ा कि यह लोग किसी असामान्य वर्ग के हैं । इनमें कोई चमत्कारी देव आवेश प्रवेश कर गया, जो हम जैसों में नहीं हो सकता । इस धारणा ने संसार भर के लोगों के मनों में यह मान्यता जमा दी कि भारतभूमि पर रहने वाले सभी देवमानव हैं । इसी धारणा का दूसरा चरण यह है कि जहाँ देवता बसते हैं वह स्वर्ग होता है । यह कसौटी भी खरी उतरती रही कि देवमानवों के सौजन्य, सहयोग और सेवासाधना में निरत होने के कारण, वैयक्तिक संबंधों, नागरिक प्रचलनों और स्नेह-सौहार्द्र के आधार पर उभरते बिखरते

आनंद उल्लास की भी यहाँ कमी नहीं है । तब यह मान्यता सहज ही बनती है कि भारत की भूमि पर ही स्वर्ग का अवतरण हुआ है और यह धरित्री ही 'स्वर्गादपि गरीयसी' है । भगवान् के अवतार जितने भी हुए हैं, वे १० हों या २४, जन्मे इसी धरित्री पर हैं । आकाश में उड़ने और अदृश्य रहने वाले अजर-अमर देवताओं को पकड़ पाना तो मुश्किल था, पर ऋषियों, मुनियों और मनीषियों की प्रज्ञा एवं आश्चर्यजनक पुरुषार्थपरायणता, कर्त्तव्यनिष्ठ तत्परता को देखते हुए यह मान्यता बना ली गई, कि देवता निस्संदेह भारतभूमि पर विचरण करते हैं । उन्होंने किसी अविज्ञात लोक में अवस्थित स्वर्ग धरती पर उतारकर, ठीक वैसी ही अनुकृति यहाँ तैयार कर ली है ।

संसार भर में मनुष्य समुदाय ने, भारतीय देवमानवों को कुछ भी कर सकने में समर्थ पाया और उनके नेतृत्व का भरपूर लाभ उठाया । युगनिर्माण योजना द्वारा प्रकाशित 'समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान' ग्रंथ में, अगणित प्रमाणों और ऐतिहासिक साक्षियों समेत यह सिद्ध किया गया है कि इस देश के निवासी, अपने निवासक्षेत्र तक ही अपनी महान् गतिविधियों को सीमित नहीं रखते रहे, वरन् उन्होंने भूमंडल के समस्त खंडों-उपखंडों, क्षेत्रों, देशों की अतिकष्ट साध्य यात्राएँ करके इस बात का प्रबल प्रयास किया कि पिछड़ापन किसी भी क्षेत्र में अपनी जड़ें जमाए न बैठा रहे । आवश्यक उत्साह और पुरुषार्थ उभारकर उसे इस तरह खदेड़ दिया जाए, जिस प्रकार कि सूर्य अपने उदय होने पर अँधेरे की सत्ता को अनायास ही तिरोहित कर देता है । जिन्हें इस संदर्भ में विस्तृत जानकारी की अपेक्षा हो, वे उपर्युक्त पुस्तक में प्रस्तुत प्रवास शृंखलाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ लें । यही है भारतीय संस्कृति की महान् परंपरा, जिसे अपनाने वाले को स्वयं अपने आपको, चरित्रवान् और आदर्शवादिता के पक्षधर पुरुषार्थ के लिए समर्पित करना पड़ता रहा है । न केवल अपने आपको ही सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत बनाना पड़ता है, वरन् संपर्कक्षेत्र को, अपने क्रियाक्षेत्र को भी इस प्रकार सुनियोजित करना पड़ता

है कि जो कुछ उपलब्ध है, उसी के सदुपयोग से अपेक्षाकृत असंख्य गुना लाभ उठाया जा सके ।

कोलंबस ने यही यश गाथाएँ अपने देश स्पेन में जन-जन से सुन रखी थीं । वह इस सोने की खदान से कुछ पाने-बटोरने के लिए आकुल-व्याकुल होकर, एक जलयान के द्वारा खोज को निकल पड़ा । सही दिशा ज्ञात न होने से वह भारतवर्ष तो न पहुँच सका, पर अमेरिका के तट पर जा पहुँचा । उसे ही भारत समझ लिया और वहाँ के निवासियों की लाल चमड़ी देखकर उन्हें 'रेड इंडियंस' नाम दे दिया । यह घटना बताती है कि यहाँ की प्रगतिशीलता को धरती के हर कोने पर किस दृष्टि से देखा जाता था ।

दूसरे यात्री भी संभवतः इसी टोह में लंबी कष्टसाध्य यात्राएँ करते हुए यहाँ आ पहुँचे और जो दृश्य देखा, उसका आँखों देखा परिचय बताने के लिए सुविस्तृत ग्रन्थ लिखे । ऐसे यात्रियों में फाह्यान, ह्वेनसांग, मैकबर्नर, मार्कोपोलो आदि के नाम प्रसिद्ध हैं । महाप्रभु कहे जाने वाले ईसा ने भी अपनी जिंदगी की लंबी अवधि इसी देश में रहकर बिताई और जो प्रकाश पाया उसे अपनी भाषा में अपने ढंग से कहा और फैलाया । ईसाई धर्म के पर्यवेक्षकों ने बौद्ध धर्म को अनुकृति के रूप में माना और कहा है ।

यह सिलसिला लंबी अवधि से चलता रहा है । पाल ब्रंटन भारत में चमत्कारों को खोजने आए । उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर आश्चर्यचकित करने वाला साहित्य प्रकाशित किया है । फ्रांस की श्री माँ, इसी उद्देश्य से भारत आईं और वे अरविंद आश्रम की अविच्छिन्न सदस्या बनकर वहीं रह गईं । ऐनी बेसेंट, गाँधी आश्रम की मिस स्लेड और ब्रिटेन में जन्मी पर्यावरण विशेषज्ञ सरला बेन जीवन के अंत तक यहीं रहीं । विवेकानंद की सहायिका के रूप में यहीं निवास करने वाली सिस्टर निवेदिता का नाम हर किसी ने सुना है । पादरी सी. एफ. ऐंड्रूज की प्रवासी भारतीयों व भारत के प्रति सेवाओं को कोई भुला नहीं

सकेगा । अन्य कुछ व्यक्तियों का उल्लेख करने भर से इस आकर्षण को देखा नहीं जा सकता । इस देश की आबादी का पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि पारसी, मुस्लिम, ईसाई आदि धर्मावलंबी किस उत्साह के साथ यहाँ आए और वातावरण को देखते हुए सदा-सर्वदा के लिए यहीं बस गए । कल्पवृक्ष की छाया में बैठने के बाद, उससे वापस लौटने का मन भला किसका होगा और क्यों होगा ?

इस संदर्भ में आश्चर्यचकित होने वालों ने यहाँ विशेष रूप से अपनाई गई 'योगविद्या' को महत्त्व दिया है और उसे चमत्कारों की जन्मदात्री कहा है । बात सच भी है, पर भ्रांतियों अत्युक्तियों और निहित स्वार्थों के जाल-जंजाल ने उसका स्वरूप ऐसा विचित्र बना दिया, जिसे जादूगरी-बाजीगरी के आधार पर अजूबे दिखाने और शगूफे छोड़ने की ठगविद्या के अतिरिक्त और कुछ कहा नहीं जा सकता है, पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं । योग एक अत्यंत उच्चकोटि की विज्ञान-सम्मत विद्या है, जिसे दो तथ्यों पर आधारित माना जा सकता है—इनमें से एक है तपश्चर्या, जिसका बोलचाल की भाषा में अर्थ होता है—संयम अपनाना, अनुशासित रहना और लक्ष्यप्राप्ति के लिए तितीक्षा के रूप में कष्टसाध्य परिस्थितियों का सामना करने के लिए अपने को अभ्यस्त बनाना । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई प्रकार के विधि-विधान, कर्मकांड, व्रत-उपवासों, पदयात्राओं आदि के विधान हैं, पर उन्हें साधनामात्र ही माना जा सकता है, साध्य नहीं । साध्य तो व्यक्तित्व में प्रामाणिकता, प्रखरता और शालीनता का ऐसा समावेश करना है, जो आकर्षणों और दबावों के आगे डगमगाए नहीं, आन पर अड़ा रहे । अनीति का सहगामी या सहयोगी बनने से साफ इनकार कर दे, फिर भले ही इसके बदले आततायियों का कितना रोष, आक्रमण, आतंक सहन करना पड़े ? ऐसी मनःस्थिति को परिपक्व करने के लिए ही तपश्चर्या नाम से जान पड़ने वाले अनेक कर्मकांडों की गणना होती रहती है । आश्चर्य इसी बात का है कि लोग लक्ष्य को भूलकर, कर्मकांडों की पूर्ति भर करते हैं और आशा

लगाते हैं कि उन्हें इन करतूतों के सहारे ही सिद्धपुरुष बनने का अवसर मिल जाएगा ।

तपश्चर्या का दूसरा पक्ष है—योगसाधना, तपश्चर्याएँ शरीर प्रधान होती हैं और योग मन को अवांछनीयताओं से मुक्ति दिलाकर, आत्म-विस्तार की परिधि में प्रवेश करने को कहता है । इसे और भी अधिक स्पष्ट और सरल रूप से समझना हो तो यों कहा जा सकता है, कि अपने कार्यक्षेत्र, स्वभाव, अभ्यास, दृष्टिकोण एवं क्रियाकलाप को ऐसा बनाना, जिसमें सुनियोजित व्यवस्था उपक्रम के अतिरिक्त और कुछ दीख ही न पड़े । मनीषियों को यही सोचना और यही करना होता है । वे अव्यवस्था जन्य दुष्प्रवृत्तियों को लुहार की तरह घन बजाकर सीधी करते हैं और उपेक्षित धातु खंडों की गलाई-ढलाई करके उन्हें अति महत्त्वपूर्ण उपकरणों का स्वरूप प्रदान करते हैं । इसके लिए प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि कई प्रकार के मार्ग अपनाए जाते हैं । ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग की एक परिपाटी भी इसी निमित्त विनिर्मित हुई । अनुष्ठान, पुरश्चरण, व्रत धारण आदि का निर्धारण भी इसी निमित्त हुआ है । इतने पर भी यदि इन सब चित्र-विचित्र कर्मकांडों के पीछे छिपा अंतःकरण का विस्तृतीकरण ध्यान में नहीं है, तो समझना चाहिए कि उसे बच्चों की खिलवाड़ से और अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकेगा । ऐसा उसका कोई प्रतिफल भी उपलब्ध नहीं होगा, जिससे किसी में योगस्तर की दिव्य क्षमताएँ दृष्टिगोचर हो सकें । भ्रमजंजाल में भटकने वालों की इस दुनिया में कमी नहीं, पर वे समय गँवाते, ठोकरें खाते और निराश रहने के अतिरिक्त और कुछ पाते कहाँ देखे जाते हैं ? लोगों के समक्ष वे अपने संबंध में बिना सिर-पैर की शेखी भले ही बघारते रहें ?

जिस योगविद्या के कारण भारत कभी स्वर्ग की समानता करने लगा था, वह वस्तुतः व्यक्तित्व में सन्निहित प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क्षमताओं का ऐसा विकास ही था जो मानवी काया में कण-कण को प्रतिभा से

सुसंपन्न, शरीर को ओजस्वी, मन को तेजस्वी और अंतःकरण को ब्रह्मवर्चस् से अभिभूत बनाने में अपनी यथार्थता का प्रत्यक्ष प्रमाण नकद धर्म की तरह हाथों-हाथ प्रस्तुत करता था । कहने का तात्पर्य यह है कि योगसाधना के लिए साधारण रहन-सहन छोड़कर, चित्र-विचित्र परिधान धारण करें, यह बिलकुल भी आवश्यक नहीं है ।

इंग्लैंड सरकार के आदेश पर वायसराय ने गाँधीजी को मिलने के लिए बुलावा भेजा था । उपयोगी वार्तालाप भी हुआ, पर वायसराय ने इंग्लैंड के प्रधानमंत्री की वह बात पूरी तरह ध्यान में रखी कि गाँधी की आँखों में आँखें डालकर न देखें । वे जादूगर हैं । जिस पर नजर गड़ाते हैं उसी को वशीभूत कर लेते हैं । मान्यता सर्वथा झूठी नहीं थी । जब असहयोग आंदोलन शुरू हुआ तो इंग्लैंड कहा करता था कि दबाव उसी सीमा तक दिया जाए जिससे गाँधी फूट न पड़े । यह ६२ पौंड का बम का गोला यदि फट पड़ा, तो ब्रिटिश प्रशासन का कहीं अता-पत्ता भी न चलेगा । गोलमेज कांफ्रेंस में गाँधी जी इंग्लैंड गए, और भी अनेक लोग उस समारोह में थे, पर शासक पक्ष के वरिष्ठ अधिकारी की आँखें गाँधी पर ही टिकी रहीं । सबकी यही उत्सुकता बनी रही कि यह व्यक्ति आखिर कहता क्या है ? उनके एक-एक शब्द को नापातौला गया, जो परिणाम सामने आए उनसे यही निष्कर्ष निकला कि गाँधी जी पूरी तरह जीतकर वापस लौटे हैं ।

योगी वर्ग में एक नाम बिनोवा का भी है, जिसने 'आराम हराम है' के मंत्र को अपनी जीवनचर्या के हर कण में समा लिया था । उन्होंने बड़ी योजनाएँ बनाईं और उनकी व्यावहारिकता अभीष्ट सफलता के सहारे सिद्ध कर दिखाई ।

महान् आंदोलनों के जन्मदाता किस प्रकार कोटि-कोटि लोगों पर हावी हो गए, इन्हीं दशाब्दियों के इतिहास के पृष्ठों पर नजर डालकर इसकी गाथाओं के उदाहरणों का ढेर सामने खड़ा देखा जा सकता है । लेनिन की आरंभिक निजी जिंदगी को जानने वाला कोई भी व्यक्ति यह

आशा नहीं कर सकता था, कि यह व्यक्ति अपने देश को इतने आश्चर्यजनक ढंग से कुशासन से मुक्त करा लेगा, आधी दुनिया के विचारों पर हावी हो जाएगा और कितने ही देशों में साम्यवादी शासन का प्रचलन कर सकने में सफल होगा ।

वैडेन पावेल का स्काउट आंदोलन अपने समय की देन है । दास-दासी प्रथा से लेकर जमीदारों की तानाशाही के अभेद्य दीखने वाले किले, कुछ तपस्वियों की प्रबल चेतना के आधार पर ही बिस्मार किए जा सके । कुछ दिनों पूर्व तक कोई यह कल्पना तक नहीं करता था कि यह संभव हो सकेगा ।

यदि किसी को पुरातन भारत की सशक्त महानता का आधार अध्यात्म योग मानने का शब्द मोह न हो, तो उसके साथ इतना और जोड़ना चाहिए—उसका भव्य भवन दो आधारों पर ईंट-चूने की नींव पर विनिर्मित हुआ था । उनमें से एक था तप अर्थात् व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय साहसिकता से भरापूरा प्रतिभा संपन्न बनाना और दूसरा सुव्यवस्था बना सकने की प्रवीणता का प्रतिनिधित्व कर सकने वाले कौशल का पक्षधर दृष्टिकोण परिमार्जित करना । इन दोनों के लिए यदि चरम स्तर का प्रयत्न बन पड़े तो समझना चाहिए कि अध्यात्म योग का वास्तविक अर्थ समझ लिया गया । उस स्तर की प्रगति ही उन सफलताओं को प्रस्तुत करती है, जिन्हें ऋद्धि-सिद्धियों के नाम से जाना जाता है । वे किसी पर आसमान से पुष्पवर्षा होने की तरह बरसती नहीं हैं ।

दक्षिण मुखी प्रवाह मोड़ते-मरोड़ते गंगा को पूर्व की ओर बहने के लिए बाधित करने वाले तपस्वी भगीरथ की कथा-गाथा प्रसिद्ध है । उन्हीं को भागीरथी का पिता कहलाने का श्रेय प्राप्त है । ऐसा ही एक प्रयास अनुसूया ने चित्रकूट के समीप मंदाकिनी को अभीष्ट दिशा में ले जाने का किया था । कहते तो यहाँ तक हैं कि उनके तेजस् से प्रभावित होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक बालक बनकर अनुशासन पालन के लिए विवश हुए थे । पांडवों के छोटे से समुदाय ने कौरवों की विशाल सेना

को परास्त करके रख दिया था । इस अद्‌भुत सफलता के पीछे योगेश्वर कृष्ण की योजनाबद्ध रणनीति काम कर रही थी । वे ही रथ के घोड़े चला रहे थे । हनुमान के पर्वत उखाड़ लाने जैसे पराक्रम के पीछे उनकी प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष शक्ति ही काम कर रही थी । वही जामवंत के उद्‌बोधन रूप में लगी और लंका दहन में महत्त्वपूर्ण भूमिका संपन्न करने में सफल हुई थी । प्रत्यक्षतः तो वे सुग्रीव की सेवा में निरत, अपने भगोड़े मालिक की सेवा चाकरी भर में लगे थे । परशुराम के कुल्हाड़े और अर्जुन के गांडीव की शक्ति सुनने वालों तक को रोमांचित करती है ।

राजा छत्रसाल जब आक्रमणकारियों से लड़ने में भारी आर्थिक कठिनाइयों में फँस गए थे, तब वे अपने गुरु प्राणनाथ महाप्रभु के पास पहुँचे थे । उन्होंने वरदान दिया कि संध्या होने तक घोड़े पर बैठकर जितने क्षेत्र का चक्कर लगा आओगे, उतने क्षेत्र की भूमि में रत्न मिलने लगेंगे । राजा छत्रसाल ने वैसा ही किया । बात सच निकली और उनकी आर्थिक कठिनाई दूर हो गई । विवेकानंद द्वारा संसार भर में भारतीय संस्कृति की पताका फहराने के मूल में उनके समर्थ गुरु रामकृष्ण परमहंस की दिव्य क्षमता काम करती रही थी । ऐसे ही अगणित प्रसंग हैं जिनसे प्रतीत होता है कि अद्‌भुत शक्तियों का उद्‌भव मनुष्य के अंतराल से होता है । योग-तप जैसे उपचारों को प्रतिभा संवर्धन हेतु अपने भीतर से ही जगाया व उभारा जाता है । उसका लाभ स्वयं भी उठाया जा सकता है तथा अन्यों को भी दिया जा सकता है ।

❑

प्रतिभा संवर्धन के दो आधार साहसिकता एवं सुव्यवस्था

एक कहावत है कि "ईश्वर मात्र उनकी सहायता करता है, जो अपनी सहायता आप करते हैं ।" इसी से जुड़ती हुई एक और उक्ति है—जिसमें दैव पर "दुर्बल का घातक" होने का आरोप लगाया गया है । गीताकार का कथन है कि "मनुष्य अपना शत्रु आप है और स्वयं अपना मित्र भी ।" यह उसकी इच्छा पर निर्भर है कि अस्त-व्यस्तता अपनाकर अपने को दुर्गति के गर्त में धकेले अथवा चुस्त-दुरुस्त रहकर प्रगति के शिखर पर निर्बाध गति से आगे बढ़ता चला जाए । गीताकार ने आगे चलकर अर्जुन के बहाने हर विचारशील से यह आग्रह किया है कि "अपने को उठाने में लगो, गिरते चलने कि धृष्टता मत करो ।"

संसार कितना भी सुखद, सुंदर, सुविधाजनक क्यों न हो, पर अपने में त्रुटियाँ रहने पर वह सारा विस्तार निरर्थक बनकर रहेगा । अपनी आँखें काम न करें, तो संसार भर का दृश्य और सौंदर्य समाप्त हुआ समझा जाना चाहिए । कानों की श्रवण शक्ति चली जाए, तो प्रवचन-कर्त्ता, परामर्शदाता और गायक व वादक निरर्थक बन गए ही समझे जा सकते हैं । दिमाग खराब हो चले तो समझना चाहिए कि संसार का हर मनुष्य उलटी चाल चल रहा है । पेट खराब हो जाए या रक्त में विषाक्तता घुस पड़े, तो दुर्बलता रुग्णता से होकर अकाल मृत्यु का भयंकर आक्रमण अब-तब में होने ही जा रहा है, यह मानना चाहिए ।

प्रगति का इतिहास, सुनियोजित तन्मयता और तत्परता की आधार-शिला पर ही लिखा गया है । इनके अभाव में किसी को पूर्वजों की कमाई या सुविधाजनक परिस्थितियों का अंबार ही हाथ क्यों न लग जाए, वह सारे वैभव को फुलझड़ी की तरह जलाकर क्षणभर का मनोरंजन कर लेगा और फिर सदा-सर्वदा पश्चाताप से सिर धुनता रहेगा । हमारी

कर्मों की कलम ही अपने भविष्य की भली-बुरी संभावना रचती रही है ।

शरीर का भारी, लंबा-तगड़ा होना एक बात है और हिम्मत का धनी होना सर्वथा दूसरी । तगड़ापन कुछ अच्छा और आश्चर्यजनक तो लगता है, पर उनमें इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति, हिम्मत और प्राण ऊर्जा की कमी हो तो उसे कायरता और भीरुता के कारण चिंतित, शंकाशील, खिन्न-उद्विग्न ही देखा जाएगा । तनिक-सी कठिनाई आ जाने पर राई को पर्वत की तरह बड़ा बना लेने और किसी प्रकार बचने-बचाने की ही कामना बनी रहेगी । वह यह समझ ही नहीं सकता कि कठिनाइयाँ कागज के बने हाथी की तरह बड़ी और डरावनी तो होती हैं, पर मनस्वी के प्रतिरोध की एक ठोकर भी वे सह नहीं सकतीं ।

हर छोटे परमाणु में अजस्र शक्ति भरी होती है । यदि उसके विस्फोट का नियोजन किया जा सके, तो प्रतीत होगा 'न कुछ' दिखने वाले में 'सब कुछ' स्तर की सशक्तता भरी हुई है । आवश्यकता मात्र प्रसुप्ति के जागरण भर की है । औसत आदमी का इतना ही नगण्य-सा स्तर जाग्रत् रहता है, जिससे वह पेट एवं परिवार की गाड़ी किसी प्रकार धकेलता रहे । जिनके अंतराल में सुनियोजित उच्चस्तर की महत्त्वाकांक्षाएँ अपना ताना-बाना बुनती रहती हैं, वे इतने बड़े कार्य संपन्न कर लेते हैं, जिन्हें देखकर साथियों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़े । बाह्य दृष्टि से एक जैसे लगने वाले व्यक्तियों के बीच भी जमीन-आसमान जितना अंतर पाया जाता है । यह अंतर कहीं बाहर से आ धमका हुआ नहीं होता, वरन् व्यक्ति ने उनकी संरचना अपने हाथों स्वयं ही की होती है । हिम्मत बढ़ाना, साहस जुटाना, पराक्रम दिखाना और जो अनुचित है उससे लड़ पड़ने में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे असंभव तो क्या कठिन भी माना जा सके । प्रगति भीतर से आरंभ होती है और बाहर तो उसकी तदनुरूप परिणति-परछाई ही दिखाई पड़ती है ।

झाड़ी, अँधेरे में भूत बनकर दिल दहला देती है । रस्सी को साँप समझने वाले की अँधेरे के माहौल में घिग्गी बँध जाती है । "शंका डायन मनसा भूत" की कहावत सोलहों आने सच है । हिम्मत वाले लंबी दुर्गम यात्राएँ एकाकी पूरी करते हैं, पर कायरों को रात के समय पेशाव करने बाहर जाना पड़े, तो किसी साथी को जगाना पड़ता है । राणा सांगा को लड़ाई के मैदान में अस्सी से अधिक घाव लगे थे, पर वे कुछ भी परवाह किए बिना तब तक दोनों हाथों से तलवार चलाते रहे, जब तक कि उनके प्राण नहीं निकल गए । भीष्म पितामह का शरीर चुभे हुए वाणों के ऊपर टंगा हुआ था, पीड़ा बहुत थी, पर उन्होंने मौत से स्पष्ट कह दिया था कि उत्तरायण सूर्य होने में अभी बहुत दिन हैं; तब तक मृत्यु को वापस लौटना चाहिए, जब तक इच्छित मुहूर्त्त न आ जाए । मौत को मनस्वी का कहना मानना ही पड़ा । किसी ने सच ही कहा है बहादुर जिंदगी में एक बार मरते हैं, पर कायरों को तो पग-पग पर मरना पड़ता है ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि मनुष्य अपनी मानसिक क्षमता का मात्र सात प्रतिशत ही शरीर यात्रा के साधन जुटाने भर में आजीवन गँवाता-खपाता रहता है, जबकि उसकी ९३ प्रतिशत सामर्थ्य सोई, खोई, मरी, मूर्च्छित या अविज्ञात् स्थिति में ही पड़ी रहती है । अपनी दौलत भरी तिजोरी की चाबी खो देने पर कोई दरिद्रियों की तरह दुर्गतिग्रस्त स्थिति में फिरे, तो उसके लिए कोई क्या कुछ करे ? यदि आत्मनिर्माण में जुटा जा सके, बुरी आदतों को कूड़े-करकट की तरह बुहारा जा सके, दृष्टिकोण में मानवी गरिमा के अनुरूप मान्यताओं का समावेश किया जा सके, तो समझना चाहिए कि वनमानुष के नर-नारायण में बदल जाने जैसा कायाकल्प उपलब्ध हो गया । उसे प्रकारांतर से व्यवस्था बुद्धि का विकास कहा जा सकता है । अपना एवं दूसरों का प्रबंध कर सकना यों एक बहुत मामूली व्यवस्था मालूम पड़ती है, पर सही बात यह है कि उससे बढ़कर और कोई गौरवास्पद वैभव-वरदान है नहीं ।

सेनापति भी आरंभ में मामूली सिपाही की तरह भरती होता है । फिर अधिकारी देखता रहता है कि इनमें से किसमें व्यवस्था बुद्धि है । वह अनुपात जिसमें जितना बढ़ा-चढ़ा पाया जाता है, वह उतनी ही भारी जिम्मेदारियाँ उठाता और अपने कौशल के बल पर असंभव को संभव कर दिखा जाता है । गौरवान्वित वे इसी आधार पर होते रहते हैं । मिलों, फैक्ट्रियों, कारखानों, उद्योगों की प्राणशक्ति कुशल प्रबंधक-संचालकों पर केंद्रित रहती है । उन्हीं की दूरदर्शिता से छोटे कारखाने बढ़कर आशातीत प्रगति का श्रेय पाते और अपने कौशल से हर किसी को अचंभे में डालते हैं । संस्थानों को शानदार स्तर और आंदोलनों को छोटे शुभारंभ से आगे बढ़ाते हुए आशातीत सफलता तक यही प्रतिभावान् पहुँचाकर दिखाते हैं ।

अँगरेजी जमाने में प्रांतों के शासनाध्यक्ष 'गवर्नर' कहलाते थे । केंद्रीय सरकार का सूत्र संचालक गवर्नर जनरल (वायसराय) कहलाता था । गवर्नर शब्द का सीधा अर्थ है 'प्रबंधक' । अपनी इसी विशेषता के कारण इंजीनियर बड़े-बड़े निर्माण कार्य संपन्न करते और व्यवसायी छोटा-सा उद्योग खड़ा करके देखते-देखते धन कुबेर बनते हैं । विपत्तियों से जूझने और प्रगति के महत्त्वपूर्ण आधार खड़े करने में जो भी सफल हुए हैं, उनमें साहसिकता और सुव्यवस्था का गुण सुनिश्चित रूप से विद्यमान रहा है ।

शक्ति, शक्ति है । उसे भले काम की तरह बुरे काम में भी लगाया जा सकता है । दैत्य, दानव, आततायी, आतंकवादी और अनाचारी तक इसी विशेषता के आधार पर रोमांच खड़े कर सकने वाले दुष्कर्म कर बैठते हैं । अनीति का आचरण करते हुए भी, अपने आतंक से दूर-दूर तक विपन्नता खड़ी कर देने वाले दस्यु और तस्कर तक अपनी सफलता का ढिंढोरा पीटते समय कारण एक ही बताते हैं कि उन्होंने अपने साहस और व्यवस्था बुद्धि के सहारे ही यह कमाल दिखाए हैं ।

सद्गुणों में अनेक धर्मधारणाओं और व्रतअनुशासनों का वर्णन किया जाता है । उनके कारण स्वर्ग मोक्ष की, ऋद्धि-सिद्धि की विभूतियाँ

हस्तगत होने की बात कही जाती है । ऐसे प्रतिपादन प्रायः संयम और परमार्थ की महत्ता को ही बताते हैं । इन समस्त उपचारों का उद्देश्य एक ही है, कि व्यक्तित्व हर दृष्टि से स्फूर्तिवान एवं श्रमशील बने । मनोयोगपूर्वक कार्य में संलग्न होने में अपनी प्रतिष्ठा, वरिष्ठता एवं सफलता, समर्थता की अनुभूति करे । मानवी गरिमा के अनुरूप अपने गुण, कर्म, स्वभाव को विनिर्मित कर लेना, संसार में एक नए देवता की अभिवृद्धि करना है । व्यक्ति बहिरंग पर जो कुछ आच्छादित है, उसका अनेकानेक अनुकरण करते और उसके प्रभाव से अनुप्राणित होते हैं । यहाँ तक कि मरने के उपरांत भी हरिश्चंद्र, भगीरथ जैसों की कथागाथा अक्षुण्ण बनी रहकर, अनेकानेकों को प्रकाश देती रहती है । यही बात अंतरंग के संबंध में भी है । यदि चिंतन, चरित्र, व्यवस्था, आस्था, विश्वास, श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा की उच्चस्तरीय स्थिति है, तो उसका प्रभाव-परिणाम धारणकर्त्ता तक ही सीमित नहीं रहता । उसका प्रभाव न जाने कितनों को; विशेषतया संपर्कक्षेत्र वालों को उठाने, उछालने की क्रिया-प्रक्रिया संपन्न करता है । तेजोवलय अंतरिक्ष में उड़ता है और जहाँ भी पहुँचता है, वहीं अपने अनुरूप चेतना-वसंत खिलाता चलता है ।

पारस को छूकर लोहा, सोना बनता है या नहीं ? इसमें अभी संदेह है, पर यह सुनिश्चित है कि प्रतापी व्यक्ति असंख्यों को अपना अनुयायी सहयोगी बना लेते हैं । महामानवों में से अधिकांश की जीवनगाथा यही बताती है, कि वे अपनी प्रामाणिकता और प्रखरता के बल पर हर दिशा से प्राणशक्ति संग्रह करते हुए, न जाने कहाँ से चलकर कहाँ जा पहुँचे । मात्र अपने प्रभाव से दूसरों द्वारा ऐसे-ऐसे कृत्य करा लेने में सफल हुए, जिन्हें वे कदाचित् स्वयं हाथ में लेते तो न कर पाते । ऐसी दिव्यक्षमता को अर्जित कर लेना और उससे अनेकों की अस्त-व्यस्तता को सुनियोजितता में बदल देना, सफल वरदान यही है । दान देने की तरह, दान दिलाना भी पुण्य मानना चाहिए । साहसिकता और सुव्यवस्था के दो गुणों में जिस किसी को भी अभ्यस्त-अनुशासित किया जाए, समझना

चाहिए कि उसकी सर्वतोमुखी प्रगति का द्वार किसी ने खोल दिया । भले ही उस अविज्ञात् शक्तिपुंज की जय-जयकार कहीं न होती हो ।

मनुष्यों में से अधिकांश की आकृति-प्रकृति लगभग मिलती-जुलती है । उनका खान-पान, सोना, जागना आदि भी एक-सा ही होता है । कोई तो साधनों-अभावों का रोना रोता रहता है, किन्तु किसी की प्रतिभा उन्हीं साधनों-अवसरों के रहते चौगुना-सौगुना काम करा देती है । उसका यश, प्रभाव और कौशल इतना बढ़ा देती है कि देखने वाले तक आश्चर्यचकित रह जाते हैं । साथ ही सहयोगियों की सेना भी अनायास ही खिंचती-घिसटती चली आती है । रीछ-वानरों की, ग्वाल-बालों की, भिक्षु-परिव्राजकों की, सत्याग्रहियों की टोलियों को निमंत्रित या गठित करने कौन कहाँ गया था ? फूलों पर तितलियाँ और मधुमक्खियाँ न जाने कहाँ-कहाँ से दौड़ती चली आती हैं ? महामानवों के असुविधा भरे जीवन भी ऐसे आकर्षक होते हैं कि उसी कष्टसाध्य परिपाटी को अपनाने के लिए अनेकानेक आतुर होते और कदम-से-कदम मिलाते आदर्शवादी संरचना के लिए प्रयाण करते देखे गए हैं ।

संसार में जितनी भव्यताएँ दीख पड़ती हैं, वे मात्र साधनों के सहारे ही खड़ी नहीं हो गईं । उनके पीछे किन्हीं सृजनशिल्पियों की मेधा ने ऐसा जादू-चमत्कार दिखाया कि ठीक समय पर उसकी योजना बन गई, ढाँचा खड़ा हो गया, उसमें प्रयुक्त होने वाले तारतम्य को बिठा दिया गया और फिर स्वप्नों को साकार बनाने में अपने आपको पूरी तरह खपा दिया । इसी प्रक्रिया का नाम सफलता है । उसे वरण करने के लिए किन्हीं दूसरों की मनुहार करने की जरूरत नहीं है । यदि व्यक्ति अपनी समझ को क्रमशः तेज करता चले, क्रमशः अधिक बड़ी जिम्मेदारियाँ कंधों पर उठाता और उन्हें पूरी करता चले, तो समझना चाहिए कि इसी विकसित प्रबंध शक्ति के आधार पर वह जहाँ भी जाएगा, सरताज बन कर रहेगा । यही सबसे बड़ी दैवी विभूति है, जो व्यक्ति को साधारण से असाधारण बनाती है ।

❑

विशिष्टता का सुनियोजन

अभावग्रस्तों को कठिनाइयों का सामना करना पड़े तो बात समझ में आती है, पर आश्चर्य तब होता है जब विपुल साधन अपने अधिकार में होने पर भी, जानकारी के अभाव में लोग हैरान फिरते पाए जाते हैं । ऐसी घटनाएँ जब सुनने को मिलती हैं तो उस अनजानेपन को दुर्भाग्य का प्रतीक मानकर खेद व्यक्त किया जाता है ।

कहते हैं कि किसी अनाड़ी ने बाप के छोड़े हीरे को काँच समझ कर अनाड़ी के हाथों बेच दिया और खुद जीवन भर दरिद्री बना रहा । लाल मणियों की माला पड़ी मिलने पर एक भीलनी उन्हें कौड़ियों के मोल बेच आई थी । कस्तूरी हिरन की नाभि में कस्तूरी रहती है, पर वह सुगंध की तलाश में निरंतर दौड़धूप करता और थककर प्राण गँवा देता है । माचिस जेब में होने की बात याद न रहने पर ढेरों घास फूँस, पास रहने पर भी एक यात्री ठण्ड में सिकुड़कर मर गया था । घर के आँगन में खजाना गड़ा होने की बात ज्ञात न होने पर, उस झोपड़ी के निवासी को जब-तब मजूरी मिलने पर आधे पेट सोना पड़ता था । ऐसी घटनाएँ प्रायः कौतूहलपूर्वक सुनी जाती हैं, तो सुनने वालों तक को हैरानी होती है ।

दिशाभ्रम हो जाने पर बनजारे रात भर चलते रहने पर भी बेकार भटकते रहते हैं और भूल का पता चलने पर वापस लौटते हैं । खंडहरों में भूलभुलैया बनी पाई जाती हैं, उनमें घुस जाने के बाद यह ख्याल नहीं रहता कि वापस लौटने का दरवाजा कौन-सा है । हड़बड़ी उस मानसिकता को और भी अधिक बेजार कर देती है । सुना है कि कई तो इस भटकाव में कई दिन घिरे रहकर मर तक जाते हैं । बालू को पानी समझकर भटकने वाले हिरनों की मृगतृष्णा का उदाहरण लोग प्रायः दिया करते हैं । वह कहानी भी प्रसिद्ध है कि सिंह का बच्चा भेड़ों के समूह में मिलने पर अपने को ही भेड़ समझने लगा था । बाद में जब उसे आत्मबोध कराया गया, तो वहाँ से हटकर सिंह के समूह में चला गया ।

सपने की स्थिति में भी लोग बेतुके स्वप्न देखते रहते हैं । नशेबाजों की खुमारी ऐसी होती है, जिसमें ऐसा कुछ सूझ पड़ता है, जिसकी वास्तविकता के साथ दूर की भी संगति नहीं बैठती ।

इस प्रकार की घटनाएँ वस्तुस्थिति की सही जानकारी न होने के कारण होती हैं, पर अचंभा तब होता है जब आम आदमी ऐसी ही विसंगतियों और भटकाव में कुछ दिन ही नहीं गँवाता, वरन् सारी जिंदगी दाँव पर लगा देता है । आम आदमी अपने-अपने ढंग की उलझनें, कठिनाइयाँ, समस्याएँ, चिंताएँ, व्यवस्थाएँ सिर पर लादे रहता है और उनके समाधान के लिए भी जिस-तिस का आसरा ताकता है । स्पष्ट है, कभी-कभार किसी की छोटी-मोटी सहायता हाथ लग भी सकती है; पर जब पूरा जगत् ही उलझन भरा है तो कौन किसकी, कब तक, कितनी सहायता कर सकता है ? विशेषतया तब जबकि हर किसी को अपनी-अपनी समस्याओं में ही इतना उलझे रहना पड़ता है, कि दूसरों की सहायता करने जैसी न तो स्थिति रह जाती है और न वैसी अभिरुचि या फुरसत ही होती है ।

अपनी गलती ढूँढ़ने-खोजने की किसी को आदत नहीं है । भ्रमों में से एक बड़ा भ्रम हर आदमी में यह भी पाया जाता है कि अपनी दौलत कम और दूसरों की दौलत चौगुनी-सौगुनी समझ पड़ती है । वस्तुतः सर्वथा दोषरहित व्यक्ति कदाचित् कोई भी नहीं होता, पर अपनी गलती कोई सोचे कैसे ? इससे हेठी जो होती है, नाक जो कटती है, अपनी सर्वज्ञता पर आँच जो आती है । इसलिए काम बिगड़ने पर उसका लांछन अपने ऊपर न लगने देने के लिए, यह सस्ता नुस्खा हाथ लगता है कि दोष किसी दूसरे पर थोप दिया जाए । इसके लिए सामने वाले किसी को दोषी ठहराने पर तो झंझट खड़ा होने का डर रहता है, इसलिए हननकर्त्ता किसी ऐसे निरीह को ढूँढ़ लेते हैं जो सामने आकर प्रतिवाद करने में समर्थ न हो । भाग्यचक्र, समय का फेर, ग्रहदशा, विधाता का विधान, कर्मरेखा आदि पर कोई भी कितना भी दोषारोपण करता रहता

है । जिन पर दोष थोपा गया है, वे उलटकर सफाई देने की स्थिति में तो होते नहीं । ऐसी दशा में आरोपी को अपनी मान्यता और भी अधिक सुनिश्चित होने का मत बना रहने में कुछ कठिनाई नहीं होती ।

एक ओर तो दूसरों पर लांछन लगाने की प्रवृत्ति जमी रहती है और दूसरी ओर आत्मसमीक्षा न कर पाने की प्रवृत्ति मनुष्यों को भ्रमित किए रहती है । एक दुष्कल्पना से ग्रसित अधिकांश लोग पाए जाते हैं कि अपनी निज की सामर्थ्य अकिंचन है, उसे बढ़ाने के लिए हम क्या कुछ कर सकते हैं ? उत्कर्ष से सुयोग मिलना अपने हाथ में नहीं है । जितना प्रयत्न अच्छे के लिए किया जा चुका है उससे अधिक और कुछ करने का अवसर ही कहाँ था । इसी प्रकार की बातें सोचकर आत्म-समीक्षा, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास का अवसर ही गँवा दिया जाता है । उपाय न सूझ पड़ने पर कुड़कुड़ाने, खीजने, झल्लाने, उद्विग्न रहने और चिंतातुर रहने के अतिरिक्त कुछ बन भी नहीं पड़ता । अपने को तनावग्रस्त बना लेना तो दुष्कल्पनाओं के आधार पर और भी अधिक सरल व संभव हो जाता है । ऐसा ही लोग करते भी रहते हैं ।

इस व्यापक भ्रांति को महामारी जैसा प्रकोप कहा जाए तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं मानी जा सकती । जनसाधारण को यह समझने का सुयोग नहीं मिल पाता कि मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियाँ इतनी अधिक हैं कि यदि उन्हें प्रसुप्ति से विरत करके जाग्रत् एवं क्रियाशील बनाया जा सके, तो हर सामान्य समझा जाने वाला व्यक्ति अपने को असामान्य सिद्ध करके दिखा सकता है । इसमें कोई रहस्यवाद नहीं है, न कुछ ऐसा है, जिसे अमान्य ठहराया जा सके । पुरातन इतिहास के पृष्ठ पलटने या अर्वाचीन इतिहास की गतिविधियों पर तनिक गंभीरता पूर्वक नजर डालने पर ऐसे असंख्यों उदाहरण आँखों देखे और कानों सुने जा सकते हैं, जिनमें आत्मविश्वास और प्रचंड साहस के बलबूते प्रगति की दिशा में चलने का सूझबूझ के साथ प्रयत्न किया गया और वे क्रमशः अधिक उपयुक्त अवसर पाते चले गए । अंततः इतनी ऊँचाई पार कर

सके, जिसे देखते हुए आश्चर्य लगता है और किसी दैवी वरदान का भ्रम होता है । इसके विपरीत, ऐसे उदाहरण भी कम नहीं देखे जा सके, जिनमें अपार साधन और अवसर होते हुए भी दुर्गुणों के शिकार रह कर, व्यक्ति दिन-पर-दिन पतन-पराभव की ओर लुढ़कते चले गए और अंत में वहाँ पहुँच गए, जिसे दुर्गति या दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है ।

साधारण समझ से अपनी पृथ्वी जहाँ-की-तहाँ स्थिर खड़ी दीखती है, पर जिन्होंने कुछ अधिक जानकारी प्राप्त की है, वे विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि वह अपनी धुरी पर लट्टू की तरह घूमती रहती है । सूर्य की परिक्रमा के लिए तीर की तरह सनसनाती हुई दौड़ती है । मनुष्य के संबंध में भी यही बात है । उसकी जीवनचर्या के लिए अग्रगमन की प्रगति संभावनाएँ कूट-कूटकर भरी हुई हैं । कमी केवल इस बात की है कि वस्तुस्थिति समझने और उस पर विश्वास करने का विवेक जगा नहीं । अपने ऊपर दीनता और हीनता की परतें इतनी मोटी जमी होती हैं कि वही अपना वास्तविक स्वरूप प्रतीत होता है ।

उपर्युक्त भ्रम से निकलने के सामान्य प्रयासों को आसपास का वातावरण नष्ट कर देता है । अहंकारियों का समुदाय दूसरों को हेय ठहराकर ही अपने बड़प्पन की पुष्टि कर सकता है । ऐसे समुदाय के अपने से समर्थ लोग इसी स्तर की समीक्षा करते रहते हैं । बड़ों की बात ही सही मान भी ली जाती है । इस कथन को औसत आदमी हृदयंगम भी करता रहा है और यह मान बैठता है कि उसकी हस्ती नगण्य है । उससे कोई बड़ा काम या बड़ा वजन उठ नहीं सकता । इसलिए खैर इसी में है कि जैसे भी कुछ दिन गुजर रहे हैं उसी प्रकार संतोषपूर्वक समय काट दिया जाए । संकटों को सह लिया जाए, दुर्दिनों के साथ तालमेल बिठा लिया जाए । इस स्तर का मानस बन जाने पर विद्यमान क्षमताएँ और भी गहरे गरत में चली जाती हैं । उन्हें उभारने, उठाने का जब भीतर या बाहर से कोई प्रयत्न ही नहीं होता, तो आगे बढ़ने, ऊँचे उठने की संभावना ही कैसे बने ? उस दिशा में कुछ ठोस

प्रयत्न करने का प्रयास ही कैसे चले ? जब उमंगें ही मर गईं तो फिर अग्रगमन का अवसर छप्पर फाड़कर आकाश से आँगन में क्यों कर आ धमके ?

संसार में पैसे की चमक-दमक बहुत जगह देखी जा सकती है और उसके आधार पर जो खरीदा जा सकता है, उसकी सज-धज भी अपनी चमक-दमक दिखाती, आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती देखी जा सकती है । किन्हीं-किन्हीं का रूपलावण्य भी मनमोहक दीख पड़ता है । कलाकार, व्यवसायी, गुणी भी कई देखे जाते हैं; पर ऐसे कम ही दीख पड़ते हैं जिन्होंने अपने साहस और पौरुष के सहारे अवरोधों से टकराते हुए प्रगति का पथ प्रशस्त किया हो । जिन्होंने गिरों को उठाया, उठों को चलाया, चलतों को दौड़ाया और दौड़तों को उछाला हो । अपनी राह तो सभी चल लेते हैं, पर सराहना उनकी है जो अपनी नाव पर अनेकों को बिठाकर उन्हें इस पार से उस पार पहुँचा सकें ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि ऐसी प्रचंड सामर्थ्य हर किसी के भीतर होते हुए भी उसका सदुपयोग कर सकना तो दूर, पहचानना तक नहीं बन पड़ता । आत्मविस्मृति ही वह अभिशाप है जिसे लोग जाने या अनजाने स्वयं अपनाते हैं और कंधे पर लादकर चलते हैं । इसी को कहते हैं- प्रतिभा का अभाव, जो कभी-कभी तो मोटे पहलवानों को भी आंतरिक दृष्टि से खोखला देखकर आश्चर्य रूप से व्यक्त किया जाता है । शारीरिक बल का प्रदर्शन तो भेड़ें और भैंसें भी आपस में टक्कर मारकर दर्प जताते देखी गई हैं । तीतरों और मुर्गों को भी मोरचे लड़ाते और अहंता में अग्रणी होने का दर्प जताते देखा जाता है । यह वास्तविक बलिष्ठता का प्रमाण नहीं है । गहराई तक जाना हो तो देखना पड़ेगा कि मन की कौन-सी दिशाधारा उस बल का प्रयोग कर रही है । गुंडे, आतंकवादी, आततायी, अनाचारी अपनी अकड़ दिखाते और रौब जमाते देखे जाते हैं । दूसरों पर धाक जमाना और उन्हें डर दिखाकर उचित-अनुचित करा लेना यही उनका प्रयास-व्यवसाय रहता है । ऐसे

लोगों की शारीरिक बलिष्ठता कैसे सराही जा सकेगी ? यही बात बुद्धिबल, धनबल आदि के संबंध में है । उसका दुरुपयोग करने वाले अपने लिए भर्त्सना और दूसरों के लिए विपत्ति ही खड़ी करते हैं । कला का दुरुपयोग भी कम नहीं हुआ है । शृंगारिकता, विलासिता, अनैतिकता जैसी पशु प्रवृत्तियों को भड़काने में संगीत, चित्रकला, साहित्य आदि का कम सहारा नहीं लिया गया है । ऐसी दशा में उस कला को किस प्रकार सराहा जाए, जो आकर्षित-प्रभावित तो अनेकों को करती है, बदले में पूरी कीमत बटोर लेने में भी सफल रहती है, पर यदि उसके और परिणामों को देखा जाए तो यही कहना पड़ता है कि ऐसे प्रख्यात् कलाकार यदि अविख्यात्-अनजान लोगों की तरह साधारण स्थिति में रह रहे होते तो कहीं अच्छे थे । तब वे लोगों को चमत्कृत करके कुमार्ग पर चलने के लिए ललचाने वाला कुकृत्य तो न कर सके होते ।

उपलब्धि क्या हस्तगत हुई ? यह देखना ही पर्याप्त नहीं ? जाँचा यह भी जाना चाहिए कि उसका उपयोग लोकहित के लिए किस प्रकार और कितना बन पड़ा ? यदि इसकी कसौटी को छोड़ दिया जाए तो सर्प-बिच्छुओं की शरीर संरचना ही प्रशंसा की पात्र बनेंगी । चीते और भेड़िए भी दूसरों की तुलना में अधिक बलिष्ठ होने के कारण प्रतिष्ठा पाने के अधिकारी समझे जाएँगे । तब उनकी मार से डरने और बचने की कोई आवश्यकता न रहेगी । सराहनीय वही बलकौशल है जिसका उपयोग सद्उद्देश्य के लिए बन पड़े । अन्यथा बढ़ी हुई प्रतिभा बारहसिंगे के बढ़े हुए सीगों की तरह है, जो देखने में कौतूहलवर्धक तो लगते हैं, पर अपना प्रयास-प्रयोजन कुछ भी साध सकने में समर्थ नहीं होते ।

❑

इस विश्व की सबसे बड़ी शक्ति

संसार के सुविस्तृत इतिहास का भूतकालीन पर्यवेक्षण करने पर इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि लालसा, वासना और आकांक्षाओं से पीड़ित तो अनेकानेक रहते चले आए, पर उनमें से सफल थोड़े-से ही हुए । कारण यह कि मूल्य चुकाने के लिए जेब में कुछ न होने से उन्हें सजी-धजी दुकान देखते हुए भी निराश होकर वापस लौटना पड़ा । इस हाट में बिकता तो एक-से-एक बड़ा आकर्षण हैं, पर सभी तो बदले की कीमत चाहते हैं । यदि वह अपने पास न हो तो फिर भटकने, थकने और निराशा भरे निःश्वास छोड़ते रहने के अतिरिक्त और क्या कुछ हाथ लगने वाला है । दूसरी ओर वे हैं जो लाखों का माल कुछ ही देर में खरीद-बेचकर मुनाफे से थैली भर लेते हैं ।

भाग्योदय, वरदान और अनुग्रह, उदारता अथवा अनुकंपा के नाम पर बहुत कुछ पाने की इच्छा-आशा की जाती है, पर यह सब मिलकर भी ओस कणों से अधिक और कुछ नहीं बनता । मोती तो पसीने से टपकते हैं, दौलत तो हाथ खोदते हैं । प्रगति के लिए हिम्मत से कम में गुजारा नहीं । सरंजाम कोई कितना ही इकट्ठा क्यों न कर ले, पर उसे सुव्यवस्थित और सुनियोजित किए बिना उसको रूठने और पलायन करने से रोका नहीं जा सकता । शक्ति की महिमा-महत्ता तो बहुत है, पर वह उसी के पास ठहरती है, जो उसके सुसंचालन की विद्या से परिचित है ।

संसार में निर्माण एक-से-एक बढ़कर हुए । पनामा और स्वेज की नहरें, पीसा की झुकी मीनार, चीन की दीवार, अंगकोरवाट (कम्बोदिया) के खंडहर, मिस्र के पिरामिड, आगरे का ताजमहल, हावड़ा का पुल जैसे महान् निर्माणों को देखकर लोग आश्चर्य तो बहुत करते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि इन्हें साधनों का ढेर भर बताकर पीछा नहीं छूटता । देखना यह भी होगा कि इनके पीछे कितनों की कल्पना ने योजना बनाकर प्रत्यक्ष

ढाँचा खड़ा करने में कितनी कुशलता और एकाग्रता खपाई है ? यही सार संक्षेप में मनुष्य का वर्चस्व है जो जहाँ भी चमकता है, वहाँ आकाश की बिजली की तरह कड़कता और अपनी क्षमता से अवगत भी कराता है ।

डार्विन के कथनानुसार औसत आदमी को बंदर की औलाद और वनमानुष मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए । प्राणी विकास के विज्ञानी एक ही बात कहते हैं कि सृष्टि के आदि में मात्र अमीबा स्तर के एककोशीय प्राणी उत्पन्न हुए, पर उसमें प्रचंड इच्छाशक्ति विद्यमान थी । वही हलचल बनी और मनोबलयुक्त क्रियाशीलता के बल पर उचित स्तर के काय कलेवर बनते चले गए । अंग-प्रत्यंग उगे, स्वभाव, अभ्यास बने और उन्हें अपने-अपने निर्वाह साधन जुटाने के अवसर मिलते चले गए । वे यह भी कहते हैं कि जड़ माने जाने वाले पदार्थों पर भी प्राणी की प्रचंड इच्छाशक्ति काम करती है और प्रतिकूलताओं के बीच भी अनुकूलता उत्पन्न कर लेती है ।

लोगों को पैसे का, रूप-सौंदर्य का, शिक्षा का, पद का, सम्मान-सहयोग का मूल्य तो मालूम है और उनके लिए ललचाते हुए, सिर पर पैर रखकर दौड़ने जैसी भगदड़ भी मचाते हैं, पर कहने लायक कुछ उपलब्धि उन्हीं के हाथ आती है जो अपने को अर्द्ध-मूर्च्छित, अर्द्ध-मृतक, आलसी, प्रमादी, निराश, हताश स्तर की कीचड़ में फँसे रहने से इनकार कर देते हैं । भीतर से उभरी शक्ति बाहर के हर क्षेत्र में वर्चस्व का प्रभाव-परिचय पग-पग पर प्रस्तुत करती है । सभी प्रजातियाँ, सभी संरचनाएँ यह प्रमाण-परिचय देती हैं कि वे अपने संकल्पबल से उभरी और अनुकूल रूप धारण करने में समर्थ हुई हैं । उनने अपने निर्वाह साधन इसी आधार पर जुटाए हैं और प्रकृति की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किसी अज्ञात प्रेरणा से बाधित होकर अपने आपको ढाला है । यह संकल्पशक्ति ही है जो प्राणियों और पदार्थों में विद्यमान् रहकर अपनी अद्‌भुत शक्ति का परिचय देती है । प्राणियों में मनुष्य सचमुच महान् है । सृष्टि को ईश्वर की संरचना माना जाता है, पर ईश्वर के

वर्तमान स्वरूप को किसने जाना ? इसका उत्तर खोजते समय इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उसें मनुष्य ने बनाया ।

इतिहास साक्षी है कि जब-जब, जिन वर्गों ने उस क्षेत्र में पराक्रम सँजोया है, उसने उसी क्षेत्र में आशातीत सफलताएँ पाई हैं । अग्नि प्रज्वलन से लेकर पहिए के आविष्कार तक उसकी प्रथम कृति थी, जिसने अनेकानेक साधनों-वाहनों का उद्‌भव आसान कर दिया । कभी उसने कृषि, पशुपालन, वस्त्र निर्माण, भवन निर्माण, व्यवसाय आदि के सहारे प्रगति के नए आयाम खोजे होंगे । भाषा और लिपि का आविष्कार अपने समय में अतिक्रांतिकारी माध्यम माना गया होगा । धर्म, समाज और शासन का गठन उन लोगों की भारी सफलता थी जो वानरों की तरह यायावर जीवन बिताते आदिमकाल की उपहासास्पद स्थिति में रहते थे । वैज्ञानिक आविष्कारों से सुसज्जित दुनिया जब गढ़ी जाने लगी तब तो मानो प्रकृति पर विजय पाने का नगाड़ा ही बजने लगा । अब तो ऐसे अणु-आयुधों के जखीरे जमा हो गए हैं, जिनसे स्रष्टा की इस सुंदर संरचना धरित्री को देखते-देखते धूल बनाकर अंतरिक्ष में उड़ा दिया जाए; यहाँ प्राणी या वनस्पति वर्ग के सभी सदस्य सर्वथा लुप्त प्रायः हो जाएँ । इस प्रकार मनुष्य ईश्वर का समर्थ सहायक भी सिद्ध होता है और दुर्धर्ष प्रतिद्वन्द्वी भी । उसकी यह शक्ति चेतना से जानी जाने वाली किसी प्रचंड संकल्पबल की वशवर्ती है और उसी के सहारे कठपुतली की तरह नाचती रहती है । इसी की न्यूनाधिकता से मनुष्य क्षुद्र और महान् बनता है । उसके उच्चस्तरीय होने पर देव और निकृष्टता अपनाने पर दैत्य का उद्‌भव होता है । दैवी शक्तियों से संपन्न व्यक्ति ही सिद्ध पुरुष या देवमानव कहलाता है ।

बुद्धिमत्ता, प्रतिभा, व्यवस्था, संरचना, परिवर्तन आदि के अनेक प्रयोग जहाँ-तहाँ होते रहते हैं और उनके प्रयोक्ता बली, महाबली कहलाते हैं, पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि समस्त कलाकौशलों, निर्माणों और सफलताओं की जन्मदात्री वह संकल्पशक्ति रूप प्राणाग्नि

ही है, जो चिनगारी से बढ़ते-बढ़ते दावानल का रूप धारण करती देखी जाती है । उत्थान और पतन उसी के दो चित्र-विचित्र खिलौने हैं ।

जिन दिनों इंग्लैंड पर जर्मनी द्वारा दिन-रात भयंकर बमवर्षा अनवरत रूप से हो रही थी, तब सर्वसाधारण को यही सोचते-कहते देखा जाता था कि इंग्लैंड का पतन अब हुआ, तब हुआ । इन घोर निराशा के दिनों में भी, उस देश के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल का आत्मविश्वासपूर्वक यही कहना था कि रूस व अमेरिका का जो भी होना हो, इंग्लैंड जीतकर रहेगा । इतने प्रगाढ़ आत्मविश्वास को देखकर स्टालिन और रूजवेल्ट दंग रह गए । तीनों ने मिलकर वे कदम उठाए कि देखते-देखते पासा पलट गया, मित्र राष्ट्र विजयी होकर रहे ।

स्मृति की तरह विस्मृति भी मनुष्य के स्वभाव में सम्मिलित है । पर उस दुर्गुण के इस सीमा तक पहुँच जाने को क्या कहा जाए, जिसमें अपने आपके आत्मगौरव को ओजस्, तेजस् और वर्चस् को ही भुला दिया जाए ? आज कुछ ऐसा ही सम्मोहन-व्यामोह किसी शैतान द्वारा बिखेरा गया दीखता है, जिससे हतप्रभ होकर व्यक्ति अपने को दीन, दुर्बल, अशक्त, असहाय, अभागा आदि समझने लगा है । यदि उसे अपनी जीवट पर विश्वास हुआ होता, तो कठिन-से-कठिन विघ्न-बाधाओं को चुनौती देते हुए अब तक न जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया होता ।

कुछ वर्ष पहले की ही एक खबर है । साइबेरिया के हिम प्रदेश में बंदी बनाए गए कुछ कैदी उस दुर्गम क्षेत्र से भाग निकले । प्रायः चार हजार मील के अति दुर्गम, आहार सामग्री से रहित क्षेत्र को पार करते हुए किसी प्रकार भारत आ पहुँचने का दुस्साहस उन्होंने कर ही दिखाया, इसके बाद उन्हें उनके देश-पोलैंड सम्मान सहित पहुँचा दिया गया ।

अनगिनत आंदोलनों के योजनाकार अपनी लगन को साकार बनाकर रहे हैं । इसके पीछे उुयोग या सहयोग का भी एक भाग हो सकता है, पर प्रधानता प्रचंड आत्मविश्वास की ही रही है । प्रगति का ढाँचा उसी पर खड़ा होता है । साधन अनायास ही नहीं जुट जाते, उनके लिए

अपने आपको इतना प्रामाणिक और प्रखर सिद्ध करना होता है कि स्वेच्छा सहयोग बरसने में कहीं कोई कमी न रहे ।

आत्मविस्मृति के दल-दल में से उबारकर मनुष्य समुदाय के एक वर्ग को इन्हीं दिनों प्रबल प्रतिभा का धनी बनाना है । इस प्रयास को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी है । कारण कि इन्हीं दिनों कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किए जाने के लिए, दैवी चेतना किन्हीं समर्थों की प्रतीक्षा कर रही है । मनुष्य स्वभाव में, प्रचलन में नरक जैसे दुर्गंधित कचरे को हटाने के लिए ऐसी जुझारू प्रवृत्ति चाहिए, जो तूफान बनकर बरसे और जो ढहाया-गिराया जाना ही है उसे स्थानांतरित करके ही रहे ।

सृजन इतना, इस स्तर का होना है, मानो खंडहरों को बटोरकर उस स्थान पर नए सिरे से भव्य भवन खड़े किए जा रहे हों । इसके लिए बादलों जैसे सशक्त समुदाय की आवश्यकता है, जो तपते धरातल को अपनी वर्षा से जलमग्न कर दे । धरित्री पर हरी घास उगाकर उसे मखमली हरीतिमा से महिमा मंडित कर दे । इन योद्धाओं के अग्रगामी बने बिना न तो दरिद्रता से लोहा लिया जा सकता है और न अस्वस्थता एवं अशिक्षा से ही पिंड छूटेगा ।

सैन्य शिक्षण, व्यवसाय, विद्यालय, व्यायामशालाओं, विद्यालयों, कला केंद्रों की कमी नहीं, पर दुर्भाग्य इसी एक बात का है कि प्रतिभा परिष्कार की सांगोपांग व्यवस्था कहीं पर नहीं है । कठिनाई इस मार्ग में यही एक है कि प्राण चेतना अंतःकरण के अंतराल में से उभरती नहीं; किन्तु उस गहन गह्वर तक पहुँचने, कुरेदने, उभारने वाले उपकरणों का एक प्रकार से सर्वथा अभाव ही हो गया । इस कमी के रहते अन्य किसी क्षेत्र का विकास भले ही हो जाए, पर प्रचंड प्रतिभा संपन्न ऐसे व्यक्तियों का दर्शन हो नहीं सकेगा, जो नवयुग की महती आवश्यकताओं को देखते हुए, अनय से जूझने और सृजन को साकार बनाने में अपने अतिरिक्त पौरुष का परिचय दे सके । इन दिनों इन्हीं महामानवों को, सुगढ़ व्यक्तित्वों-प्रतिभावानों को ढूँढ़ निकालने की प्रक्रिया संपन्न होनी है ।

❑

प्रतिभा बनाम तेजस्विता बनाम तपश्चर्या

मनुष्य अन्य जीवधारियों से भिन्न है । उसकी शारीरिक संरचना इतनी अद्‌भुत है कि वह कलाकौशल के क्षेत्र में न जाने क्या-क्या चमत्कार दिखा सकता है । उसका बुद्धि संस्थान इतना अद्‌भुत है कि सुविधा-साधनों की बात ही क्या, वह उसके बलबूते वैज्ञानिक के रूप में प्रकृति का रहस्योद्‌घाटन और प्राणिजगत् का भाग्यनिर्माता होने तक का दावा कर रहा है । विद्या बुद्धि से संबंधित अनेकानेक तत्त्वदर्शन उसने विनिर्मित किए हैं । शासन और समाज की संरचना उसी की सूझबूझ का प्रतिफल है । साहित्य का अक्षय भंडार उसी का सृजा हुआ है । उसी ने देवी-देवताओं की सृष्टि की है । कहने को तो यह भी कहा जाता है कि ईश्वर ने भले ही सृष्टि को बनाया हो, पर ईश्वर जिस भी रूप में आज लोकमानस में स्थान पा सका है, वह मनुष्य की ही प्रतिष्ठापना है । इस दृष्टि से तो वह स्रष्टा का भी स्रष्टा हुआ न ? कैसा अद्‌भुत है यह गले न उतरने वाला सत्य और तथ्य । मनुष्य सचमुच महान् है । दार्शनिकों ने उसे भटका हुआ देवता कहा है । शास्त्रकार कहते हैं कि मनुष्य से श्रेष्ठ इस संसार में और कुछ नहीं है ।

बात बहुत हद तक सही भी मालुम पड़ती है, क्योंकि अवतारों से लेकर महामानवों तक का इतिहास एक ही बात बताता है कि मनुष्य अपने आप को समझ और विकसित कर सके तो वह उस स्तर तक पहुँच सकता है, जिसका प्रतिपादन, वेदांत दर्शन की शिवोऽहं, सच्चिदानंदोऽहम्, अयमात्मा ब्रह्म, तत्वमसि आदि उक्तियों के माध्यम से, उसे ईश्वर सिद्ध करता है । ईश्वर का राजकुमार या प्रतिनिधि होने का दावा तो अनेकों मूर्द्धन्यों ने अनेक बार किया है । ईसा को ईश्वर का पुत्र होने की मान्यता मिली है ।

यह पृथ्वी अनादिकाल से ऊबड़-खाबड़, खाई-खड्डों से भरी हुई अनगढ़ जीव-जन्तुओं की क्रीड़ास्थली रही होगी । उसे आज की स्थिति

में लाने और स्वर्गादपि गरीयसी बनाने में मनुष्य की कलाकारिता की ही प्रधान भूमिका रही है । वनमानुष या नर-वानर की आदिम स्थिति से ऊपर उठकर उसने अपने को क्या-से-क्या बना लिया, इसे देखकर हैरत में रह जाना पड़ता है । प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियाँ कभी अविज्ञात रही होंगी, पर आज तो उसने परमाणु में विद्यमान् शक्ति स्रोतों को हस्तगत कर लेने से लेकर अंतरिक्ष पर साम्राज्य स्थापित करने तक की ठानी है । मनुष्य सचमुच वह है, जो कुछ इस ब्रह्मांड में महान् से महानतम् हो सकता है ।

आश्चर्य इस बात का है कि उसे भटकाव ने इस बुरी तरह से जकड़ा कि वह अपने अस्तित्व, महत्त्व एवं स्तर के संबंध में इतना अधिक दिग्भ्रांत हो गया है कि उसे भटकाव की चरम सीमा कहा जा सकता है ।

भटकाव का पहला सोपान वहाँ से आरंभ होता है, जहाँ मनुष्य अपनी सत्ता, महिमा, गरिमा और क्षमता के संबंध में लगभग पूरी तरह विस्मृति की खुमारी में चला जाता है । अपनी आकृति-प्रकृति की भिन्नता को तो देखता है, पर यह नहीं सोच पाता कि वह पशुस्तर के प्राणियों से चेतना के क्षेत्र में कुछ विशिष्ट है । प्राणी पेट भरने और प्रजनन के कौतुक का रसास्वादन करने के लिए जीवित रहते हैं । उन्हें न मर्यादाओं के प्रति श्रद्धा होती है और न वर्जनाओं से बचने की आस्था । बंधनों, उत्तेजनाओं और अवरोधों से बाधित होकर ही वे अनुचित को अपनाने से रुक पाते हैं । स्वच्छंदता और क्षमता रहने की स्थिति में उन्हें मर्यादा पालन में कोई उत्साह नहीं रहता । आवश्यकता और मनमरजी ही उनकी प्रेरणा के स्रोत होते हैं । मनुष्य की भावना और धारणा भी ऐसी हो, तो उसे नर-पशु से अधिक और कुछ नहीं कहा जा सकता है । जिनने लोभ, मोह और अहंकार की लिप्सा-लालसा को ही अपना लक्ष्य मान लिया है, वे उचित-अनुचित का अंतर किस प्रकार कर सकेंगे ? संकीर्ण स्वार्थपरता के भव-बन्धनों से छुटकारा पा सकना उनसे कैसे बन पड़ेगा ? जिन्हें संपन्नता की तृष्णा और बड़े कहलाने की महत्त्वाकांक्षाएँ

जकड़े रहती हैं, उनके लिए विचारशीलता के स्वच्छंद आकाश में पंख फड़फड़ाना कैसे संभव है ? आम आदमी साधनों और क्षमताओं की दृष्टि से कैसा ही क्यों न दीख पड़े, पर उसे आदर्शों की उमंगें प्रभावित ही नहीं करतीं । उत्कृष्टता की गरिमा अपनाने के लिए उमंगें ही नहीं उठतीं । पुण्य और परमार्थ का प्रसंग तो एक प्रकार से छूट ही जाता है, जिसके लिए स्रष्टा ने मानवी उत्कृष्टता का, लगभग देवोपम स्तर का सृजन विशेष रूप से किया है । उसके पूरी तरह छूट जाने के उपरांत व्यक्ति क्षुद्र कृमि-कीटकों की गईगुजरी श्रेणी में ही गिने जाने योग्य रह जाता है, भले ही वह पदाधिकारी, पदवीधारी, संपन्न, कुशल एवं विभूतिवान् ही क्यों न समझा जाता हो ? यह सुविधाएँ मात्र शारीरिक विलासिता, सज्जा अथवा इठलाने भर के काम आती हैं । अंतःचेतना को इनकी बहुलता से न तो संतोष होता है और न उल्लास मिलता है, जिसके आधार पर वह अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर सके । यही है वह अभाव जिसके बिना हर घड़ी उद्विग्नता एवं खीझ छाई रहती है ।

धर्मचर्चा तो कई लोग करते और सुनते रहते हैं, पर होता वह सब कुछ खोखला ही है । लोग पूजा-पाठ के कर्मकांडों, तीर्थ-पर्यटनों, भजन-प्रदर्शन की विडंबनाओं से मन बहलाते और अपने को धर्मध्वजी मानते देखे गए हैं पर बात वस्तुतः वैसी है नहीं । कर्मकांडों का एक मात्र मंतव्य यह है कि चिंतन और व्यवहार में अधिकाधिक शालीनता का समावेश करें । जिन्हें धर्म में वस्तुतः कुछ रुचि है, उन्हें देवोपम स्तर का जीवनयापन करते देखा जाना चाहिए । उनके अंतरंग और बहिरंग दोनों ही प्रामाणिकता एवं प्रखरता से भरे होने चाहिए । अनौचित्य को अपनाकर भी लोग सुविधा-साधनों का संग्रह और चारणचाटुकारों के माध्यम से मिल सकने वाली प्रशंसा बटोर लेते हैं, पर उनमें न तो यह गहराई होती है और न स्थिरता । धुएँ से बने बादल कितने ही घने क्यों न हों, हवा के एक झोंके में जिधर-तिधर बिखर जाते हैं । छलावा

पानी के बबूले की तरह कुछ ही क्षणों में अपना अस्तित्व गँवा बैठता है ।

प्रतिभा के विपुल भंडार मनुष्य की अंतःसत्ता में भरे पड़े हैं; उन्हें उभरने-प्रकट होने का अवसर उन दबावों के कारण आने ही नहीं पाता, जो कषाय-कल्मषों के रूप में आत्मसत्ता के ऊपर स्वेच्छापूर्वक लाद लिए गए हैं । लकड़ी को पानी पर तैरते रहना चाहिए, पर यदि उस पर भारी चट्टानें बाँध दी जाएँ तो अपना स्वाभाविक गुण तैरना दबकर रह जाता है । विभूतिवान् होते हुए भी मनुष्य निकृष्टता की चट्टान सिर पर लाद लेने के उपरांत तैरने और अपना वास्तविक स्वरूप दिखा पाने की स्थिति में रह ही नहीं जाता ।

प्रसुप्त प्रतिभा को जागरण का अवसर मिले, इसके लिए आवश्यक है कि श्रेष्ठ चिंतन से अंतराल को और दुष्ट आचरण से काय कलेवर को बचाए रहने का प्रयत्न किया जाए । यह तभी बन पड़ेगा जब अवांछनीय महत्त्वाकांक्षाओं की हथकड़ी-बेड़ी से हाथ-पैर खुले रहें । लोगों की उत्कंठा धनाढ्य बनने में रहती है, ताकि विलासिता के विपुल साधन जुटाए जा सकें; साथ ही अभावग्रस्तों की बिरादरी में अपने को बढ़ा-चढ़ा सिद्ध करने की मूँछें मरोड़ी जा सकें । इतनी छोटी सीमा में जिनका अंतराल केंद्रीभूत होकर रह गया है, वे उन महान् कार्यों के प्रति उन्मुख ही नहीं हो सकते, जो मानवी गरिमा में चार चाँद लगाते हैं । खूँटे से बँधी हुई नाव चप्पू चलाते रहने पर भी आगे कहाँ बढ़ पाती है । संकीर्ण स्वार्थपरता से ग्रसित व्यक्ति न तो आदर्शवादिता अपना सकता है और न ऐसा कुछ कर सकता है, जिसे उत्कृष्ट कहा जा सके । सज्जा की विडंबना रचकर तो कुरूप वेश्याएँ भी अपने को परी जैसी सुंदर दिखाने का भ्रम रचती रहती हैं ।

प्रतिभा कहीं बाहर से बटोरनी नहीं पड़ती, उसे सदा भीतर से ही उभारा जाता है । इसके लिए उन अवरोधों को हटाना अनिवार्य है, जो भारी चट्टान की तरह उत्कृष्टता के मार्ग में भयानक अवरोध बनकर

अड़े होते हैं । इस संदर्भ में स्मरण रखने योग्य तथ्य है कि औसत नागरिक स्तर का निर्वाह अंगीकार किया जाए, अन्यथा तृष्णा और वासना की लिप्सा इतनी सघनता के साथ छाई रहेगी कि अपनी सामर्थ्य की तुलना में अकिंचन जितना परमार्थ भी करते न बन पड़ेगा । यह खाइयाँ इतनी चौड़ी और इतनी गहरी हैं कि छोटे-से जीवन का समूचा साधन, श्रम, कौशल खपा देने पर भी उन्हें भरा नहीं जा सकता । फिर वह बन ही कैसे पड़े जो उत्कृष्टता के साथ अति सघनतापूर्वक जुड़े हुए प्रतिभा-परिष्कार का पुण्यप्रयोजन संतोषजनक मात्रा में उपलब्ध करा सके ।

लालसा-जन्य भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं में कटौती किए बिना किसी के पास भी इतना समय, श्रम, साधन बच नहीं सकता, जिसके सहारे आत्मकल्याण और लोककल्याण की दिशा में कुछ कहने लायक कदम उठ सकें । साधु और ब्राह्मणों को भूसुर की, पृथ्वी के देवता की उपमा दी जाती रही है । वह इसलिए कि उनने संयम, अपरिग्रह, संतोष की राह अपनाई । अपने निजी बड़प्पन में जिसकी जितनी अभिरुचि होगी, वह उतना ही अपने को व्यस्त और अभावग्रस्त अनुभव करेगा । सदा यही कहता रहेगा कि अपनी समस्याओं से ही घिरा हुआ हूँ, जबकि वस्तुतः वास्तविक समस्याएँ मनुष्यों के सामने होती ही कितनी हैं ? फिर यदि उन्हें व्यावहारिक बुद्धि द्वारा समझदारी के साथ सुलझाया जाए, तो इतनी सरलतापूर्वक सुलझ जाती हैं, मानो वे वस्तुतः थीं ही नहीं । भ्रांतियों के कारण वे बढ़ीं या लाद दी गई हैं ।

संयम-नियम के कितने ही अनुबंध हैं, जिनमें आहार-विहार की शुद्धि, सज्जनता, सद्भावना, श्रमशीलता, मितव्ययता, स्वच्छता, सहकारिता, अनुशासन प्रियता आदि प्रमुख हैं । इनके विपरीत अनेक दोष हैं—असंयम, चटोरापन, आलस्य, प्रमाद, निष्ठुरता, स्वच्छंदता, अपव्यय, व्यसन आदि जो प्रगति में बाधक बनते हैं । यह सब देखने-सुनने में बहुत ही दुष्कर प्रतीत होते हैं; पर वस्तुतः हैं संकीर्ण स्वार्थपरता और

स्वेच्छाचार की पैदा की हुई औलाद ही । इनमें से एक-एक को गिनना और रोकथाम करना मढ़क तोलने के समान है । बिस्तर को धूप में डाल देने के उपरांत खटमल और उनके अंडे-बच्चे सभी मर जाते हैं । इसी प्रकार दृष्टिकोण को उदात्त बना लेने के उपरांत अपना स्वरूप, लक्ष्य और कर्त्तव्य तीनों ही सूझ पड़ते हैं । उस प्रकाश के जलते ही उन भूत-पलीतों से छुटकारा मिल जाता है, जो अँधेरे के कारण सामान्य होते हुए भी, डरावने बनकर भयभीत करते और त्रास देते थे ।

दृष्टिकोण में जब विशालता का समावेश होता है तो लगता है कि परमार्थ ही परम स्वार्थ है । इसके बराबर लाभ और किसी व्यवसाय में नहीं । इस तथ्य को इतिहास प्रसिद्ध सभी महामानवों से लेकर सामयिक श्रद्धाभाजन व्यक्तियों के ऊपर बरसती हुई सद्भावना को देखकर सहज समझा जा सकता है, कि व्यक्तिगत लाभ की बात सोचने वाले भी यदि दूरदर्शी हों, तो उन्हें परमार्थ प्रयोजनों में अपनी क्षमता लगाने के उपरांत बदले में कई गुना अधिक मिलता है । एक बीज बोया जाता है, पर हजार गुना होकर लौटता है । यही नीति महामानवों की रहती है । वे समाज के खेत में पुण्यपरमार्थ के बीज बिखेर देते हैं और उस फसल को अपने लिए ही नहीं, समाज के लिए भी काटते व विश्ववसुधा को लाभान्वित करते हैं । यही प्रतिभा का चिह्न है ।

प्रतिभा, तेजस्विता को कहते हैं । यह चेहरे की चमक या चतुरता नहीं, वरन् मनोबल पर आधारित ऊर्जा है । गाँधी जी ९२ पौंड वजन और ५ फुट २ इंच के थे । रंग के काले और कुरूप भी; पर उनका तेजस् ऐसा था कि जनसाधारण से लेकर देश के वरिष्ठ मूर्द्धन्यों तक को उनका आदेश शिरोधार्य करते देखा जा सकता था । यहाँ तक कि विशाल साम्राज्य के अधिपति अंगरेज भी उनसे प्रभावित होकर बिस्तर गोल करके चले ही गए । यह तेजस् निजी और सामूहिक जीवन के हर पक्ष को जगमगाता है । उसे प्रखरता भरी ऊर्जा से जाज्वल्यमान बना देता है ।

तेजस्विता तपश्चर्या की उपलब्धि है, जो निजी जीवन में संयम-साधना और सामाजिक जीवन में परमार्थपरायणता के फलस्वरूप उद्भूत

होती है । संयम अर्थात् अनुशासन का, आत्मनियंत्रण का कठोरतापूर्वक परिपालन । इसके लिए मनुष्य को तृष्णा, वासना और अहंता के त्रिविध नागपाशों से छूटना पड़ता है । 'सादा जीवन उच्च विचार' का ब्राह्मणोचित औसत नागरिक स्तर का जीवनयापन करना पड़ता है । जो इतना कर सके, उन्हीं से परमार्थ सधता है और योगियों में पाई जाने वाली सिद्धियों, शक्तियों और विभूतियों का अंतराल में उद्‌भव और अखिल अंतरिक्ष से अभिवर्षण होता है । दैवी अनुग्रह या वरदान भी इसी को कहते हैं ।

कर्मकांडपरक इसके साधना-विधान अनेक हैं, पर सर्वसुलभ प्रक्रिया यही है कि निजी जीवन इतना हलका-फुलका रखा जाए कि उसका निर्वाह न्यूनतम श्रम और समय में ही संभव होता रहे । इसके उपरांत ही श्रम, समय और साधन इतनी मात्रा में बच पाते हैं कि उनके आधार पर परमार्थ में निरत रहकर परब्रह्म के साथ एकात्म होने का रसास्वादन किया जा सके, देवोपम जीवन जीने का आनंद लाभ उठाया जा सके ।

किस प्रयोजन के लिए, किस अवसर पर, किस प्रकार, क्या संयम बरता जाए ? यह निर्णय-निर्धारण व्यक्ति विशेष की परिस्थिति और मनःस्थिति को देखते हुए करना पड़ता है । जिसके जीवन का जो पक्ष उद्धत हो चला हो, उसे सरकस के जानवरों की तरह बलचातुर्य प्रयोग करते हुए कलाकौशल दिखा सकने के लिए प्रशिक्षित करना पड़ता है । शरीर और मन दोनों को ही शालीनता अपनाए रहने के लिए अभ्यस्त करना पड़ता है । संयम योग यही है । जो इतना कर सका, वही पुण्य-परमार्थ अर्जित करने का भी अधिकारी है । उद्धत् आचरण वाला व्यक्ति कीचड़-से-कीचड़ धोने के प्रयत्न में क्या कुछ सफलता प्राप्त कर सकेगा ? शालीनता और परमार्थपरायणता मिलकर ही तपश्चर्या बनती हैं और उन्हीं के आधार पर प्रतिभा की ऊर्जा अपनी प्रचंडता का परिचय देती है ।

प्रतिभा संवर्धन हेतु निर्धारित विज्ञानसम्मत प्रयोग-उपचार

प्रतिभा परिष्कार के लिए व्यक्ति की प्रामाणिकता और प्रखरता के दोनों पक्ष समान रूप से मजबूत बनाने पड़ते हैं । भावभरी उमंग उत्साहों से सनी एकाग्र तन्मयता उभारनी पड़ती है । साथ ही समय को श्रम के साथ ही अविच्छिन्न रूप से जोड़े रहने वाली तत्परता या श्रमशीलता कार्यान्वित करनी पड़ती है । संकीर्ण स्वार्थपरता के दायरे से आगे बढ़ना होता है; ताकि सादा जीवन उच्च विचार की रीति-नीति अपनाने के साथ ही बचे समय, श्रम और साधनों को सत्प्रवृत्ति संवर्धन में-लोक सेवा में लगाया जा सके । उच्चस्तरीय प्रतिभा का संवर्धन इसी प्रकार होता है ।

यहाँ प्रतिभा का आशय-सदैव आदर्शोन्मुख बुद्धि व भावना के समन्वित विकास से लिया जाना चाहिए । ऐसे प्रतिभा संपन्न ही स्वयं को प्रेरणापुंज आदर्शों के प्रतीक के रूप में उभारते एवं स्वयं को ही नहीं, समय को भी निहाल करते हैं । चर्चा इसी प्रतिभा के विकास से संबंधित उपचारों की चल रही है ।

क्या ऐसा भी संभव है कि बालकों को लिखने की पट्टी पर मनके सरकाकर गिनती सिखाने, अथवा तीन पहिए की गाड़ी का सहारा लेकर चलना सिखाने की तरह, किन्हीं अभ्यासों के माध्यम से जनसाधारण को भी प्रतिभा संपादित करने की दिशा में अग्रसर किया जा सके ? उत्तर हाँ में भी दिया जा सकता है । जनसामान्य शारीरिक अंग-अवयवों की पुष्टाई के लिए अखाड़े जाने की विधि-व्यवस्था बताते हैं । अखाड़ों में निर्धारित अभ्यासों को अपनाना, शारीरिक अंगों को सशक्त बनाने के लिए व्यायामों का उपक्रम एवं आहार में परिवर्तन अभीष्ट माना जाता है । ऐसे ही कतिपय साधना-उपक्रम प्रतिभा परिष्कार के संदर्भ में भी निर्धारित हैं और वे बहुत हद तक सफल होते भी देखे गए हैं । ऐसे

कुछ आधारों का, जिनका ब्रह्मवर्चस् की शोध-प्रक्रिया में प्रयोग किया जाता है अथवा जिन्हें वर्तमान या संशोधित रूप में प्रयुक्त किए जाने की संभावना है, उनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है ।

(१) **स्वसंकेत (ऑटोसजेशन)**--शांत वातावरण में स्थिर शरीर और एकाग्र मन में बैठा जाए । भावना की जाए कि अपने मस्तिष्क केंद्र से निस्सृत प्राणविद्युत् का समुच्चय शरीर के अंग-अवयवों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में प्रवाहित हो रहा है । शिथिलता का स्थान समर्थ सक्रियता ग्रहण कर रही है । उस आधार पर प्रत्येक अवयव पुष्ट हो रहे हैं । इंद्रियों की क्षमता का अभिवर्धन हो रहा है । चेहरे पर चमक बढ़ रही है । बौद्धिक स्तर में ऐसा उभार आ रहा है जिसका अनुभव प्रतिभा परिवर्धन के रूप में अपने को तथा दूसरों को हो सके ।

वस्तुतः स्वसंकेतों में ही मानसिक कायाकल्प का मर्म छिपा पड़ा है । श्रुति की मान्यता है कि--यो यच्छ्रद्धः स एव सः अर्थात् जो जैसा सोचता और अपने संबंध में भावना करता है, वह वैसा ही बन जाता है । विधेयात्मक चिंतन महापुरुषों के गुणों के अपने अंदर समावेश होने की भावना से, सजातीय विचार खिंचते चले आते हैं व वांछित विद्युत् प्रवाहों को जन्म देने लगते हैं ।

मनोवैज्ञानिक इसी आधार पर व्यक्तित्व में, विचारप्रवाह में परिवर्तन लाने की बात कहते हैं । उनका मत है कि जैसे पृथ्वी के चारों ओर आयनोस्फीयर है, उसी प्रकार मानवी मस्तिष्क के चारों ओर भी एक आयडियोस्फीयर होती है । यह वैसा होता है जैसा मनुष्य का चिंतन-क्रम होता है । क्षणमात्र में यह बदल भी सकता है और पुनः वैसा ही सोचने पर पूर्ववत् भी हो सकता है । इसी चिंतन प्रवाह के आदर्शोन्मुख, श्रेष्ठता की ओर गतिशील होने पर व्यक्ति का मुखमंडल चमकने लगता है और वह दूसरों को आकर्षित करता है । ऐसे ही व्यक्ति के कथन प्रभावोत्पादक होते हैं; इस सीमा तक कि अन्य अनेकों में भी परिवर्तन ला सकें । एक प्रकार से स्वसंकेतों द्वारा अपने आभामंडल को एक सशक्त चुंबक में

परिणत किया जाता है । मनोवैज्ञानिक कहते हैं—'थिंक एण्ड ग्रो रिच' अथवा 'एडाप्ट पाजिटिव प्रिंसीपल टूडे' । आशय यह कि सोचिए, विधेयात्मक सोचिए एवं अभी इसी क्षण सोचिए, ताकि आप स्वयं को श्रेष्ठ बना सकें । सारे महामानव स्वसंकेतों से ही महान् बने हैं । गाँधी जी ने हरिश्चंद्र के नाटक को देखकर स्वयं को संकेत दिया कि सत्य के प्रयोगों को जीवन में उतारो व उसके परिणाम देखो । उनकी प्रगति में इस चिंतन की कितनी महान् भूमिका थी, यह सभी जानते हैं ।

ब्रह्मवर्चस् की शोध प्रक्रिया में ऑडियो एवं वीडियो कैसेट का आश्रय लेकर ईयरफोन द्वारा संकेत दिए जाते हैं । कुछ विराम के बाद पुनः उन सभी प्रसंगों पर चिंतन करते रहने को कहा जाता है । इससे प्रभावशाली विद्युत् प्रवाह जन्म लेने लगता है । इसकी प्रत्यक्ष परिणति जी. एस. आर. बायोफीड बैक के रूप में देखी जा सकती है; जिसमें व्यक्ति चिंतन द्वारा ही अपने त्वचा प्रतिरोध को घटाता-बढ़ाता व स्वयं भी उसे देखता है । इसी प्रकार श्वसन दर, हृदय की गति, रक्तचाप आदि को स्व-संकेतों से प्रभावित किया जा सकता है । विपश्यना ध्यान एवं जैन ध्यान पद्धति इसी स्वसंकेत पद्धति पर आधारित हैं । कोई कारण नहीं कि सही पद्धति का आश्रय लेने पर प्रतिभा में वांछित परिवर्तन उत्पन्न न किए जा सकें ।

(२) **दर्पण साधना**—यह मूलतः आत्मावलोकन की, आत्मपरिष्कार की साधना है । बड़े आकार के दर्पण को सामने रखकर बैठा जाए । सुखासन में जमीन पर या कुर्सी पर बैठा जा सकता है । खुले शरीर के प्रत्येक भाग पर विश्वास भरी दृष्टि से अवलोकन किया जाए । पहले अपने आपके बारे में चिंतन कर, अंतः के दोष-दुर्गुणों से मुक्त होते रहने की भावना की जाए । वह परमसत्ता बड़ी दयालु है । भूत को भुलाकर अब यह अनुभूति की जाए कि भीतरी संरचना में प्राण विद्युत् बढ़ रही है और उस की तेजस्विता त्वचा के ऊपरी भाग में चमक बढ़ाती हुई अंग-अंग से फूटी पड़ रही है । पहले जो निस्तेज-क्षीण, दुर्बलकाय सत्ता

थी, यह बदल गई है एवं शरीर के रोम-रोम में विद्युत् शक्ति ही छाई हुई है । विकासक्रम में उभार आ रहा है । प्रतिभा परिवर्धन के लक्षण निश्चित रूप में दीख पड़ रहे हैं एवं सामने बैठी आकृति में अपना अस्तित्व पूर्णतः विलीन हो रहा है । यह ध्यान प्रक्रिया लय योग की ध्यान साधना कहलाती है और व्यक्ति का भावकल्प कर दिखाती है ।

(३) **रंगीन वातावरण का ध्यान**—हर रंग में सूर्य किरणों के अपने-अपने स्तर के रसायन, धातुतत्त्व एवं विद्युत् प्रवाह होते हैं । वे शरीर और मस्तिष्क पर अतिरिक्त प्रभाव छोड़ते हैं । इनमें से किसी का अनुपात घट-बढ़ जाता है अथवा विकृत असंतुलित हो जाता है, तो कई प्रकार के रोग-उत्पात उठ खड़े होते हैं । इस हेतु रंगीन पारदर्शी काँच के माध्यम से अथवा विभिन्न रंगों के बल्बों द्वारा पीड़ित अंग पर अथवा अंग विशेष पर उसकी सक्रियता बढ़ाने के लिए रंगीन किरणों को आवश्यकतानुसार निर्धारित अवधि तक लेने का विधान है । प्रतिभा परिवर्धन हेतु उचित रंग विशेष का आँखें बन्द करके ध्यान भी किया जाता है । कुछ देर तक सप्त वर्णों के क्रम में से निर्धारित रंग, (बैंगनी, नीला आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल) के फ्लेशेस स्ट्रोबोस्कोप यंत्र द्वारा चमकाए जाते हैं एवं आँख पर पहने चश्मे में वही वर्ण विशेष सतत् दीखता रहता है । इसका प्रभाव मस्तिष्क के सूक्ष्म केंद्रों, चक्र संस्थानों आदि पर पड़ता है । नियमित रूप से कुछ देर के ध्यान के क्रमशः अभ्यास करते रहने पर वांछित परिवर्तन प्रक्रिया आरंभ हो जाती है । ध्यान यह किया जाता है कि संसार में सर्वत्र उसी एक रंग की सत्ता है, जो अपने शरीर में प्रवेश करके अभीष्ट विशेषताओं की ऊर्जा शरीर में प्रवाहित करती है । यह ध्यान पाँच से दस मिनट तक किया जाता है । विशेषज्ञों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकृति के साधकों के लिए भिन्न-भिन्न वर्णों का निर्धारण करके ही यह प्रक्रिया आरम्भ की जाती है ।

(४) **प्राणाकर्षण प्राणायाम**—इस समस्त ब्रह्मांड में प्राणतत्व भरा पड़ा है । उसमें से साधारणतया प्राणी को उतनी ही मात्रा मिलती है,

जिससे वह अपना जीवननिर्वाह चलाता रहे । इससे अधिक मात्रा खींचने की आवश्यकता तब पड़ती है, जब किन्हीं उच्च उद्देश्यों के लिए प्राण चेतना का अधिक अंश आवश्यक हो । शरीरगत प्राण एवं समष्टिगत महाप्राण का संयोग शरीर स्थित प्राण का नवीनीकरण ही नहीं करता, प्राण धारणकर उसे प्रयुक्त करने की क्षमता को भी बढ़ाता है । चेतना जगत् में प्राण ही एक ऐसी शक्ति है जो विद्युत् ऊर्जा के रूप में "निगेटिव आयंस" के रूप में विद्यमान हैं । इसकी कमी व्यक्ति को रोगी, निस्तेज, प्राणहीन बनाती है, उसकी प्रभावोत्पादकता को कम करती है एवं प्रचुर मात्रा उसे निरोग, तेजस्वी, प्राण संपन्न बनाकर उसकी प्रभावक्षमता में अभिवर्धन करती है ।

प्रतिभा परिवर्धन के लिए एक विधान प्राणाकर्षण प्राणायाम का है । इसकी विधि यह है कि कमर सीधी, सरल आसन में, हाथ गोदी में, मेरुदंड सीधा रखकर बैठा जाए । ध्यान किया जाए कि बादलों जैसी शक्ल के प्राण का उफान हमारे चारों ओर उमड़ता चला आ रहा है और हम उसके बीच निश्चिंत प्रसन्न मुद्रा-में बैठे हैं । नासिका के दोनों छिद्रों से धीरे-धीरे साँस खींचते हुए भावना की जाए कि साँस के साथ ही प्रखर प्राण की मात्रा भी घुली हुई है और वह शरीर में प्रवेश कर रही है । अंग-अवयवों द्वारा वह धारण की जा रही है । खींचते समय प्राण के प्रवेश करने की व साँस रोकते समय अवधारण की भावना की जाए । धीरे-धीरे साँस बाहर निकालने के साथ यह विश्वास किया जाए कि जो भी अवांछनीयताओं के, दुर्बलता के तत्व भीतर थे, वे साँस के साथ घुलकर बाहर जा रहे हैं । फिर लौटने वाले नहीं हैं । इस प्राणायाम को आरंभ में पाँच से दस मिनट ही करना पर्याप्त है । क्रमशः यह अवधि बढ़ाई जा सकती है । शोध संस्थान द्वारा यह जाँचा जाता है कि प्राण धारण क्षमता कितनी बढ़ी, रक्त में से दूषित तत्व कितनी मात्रा में निकले तथा रक्त में ऑक्सीजन का अनुपात कितना बढ़ा । यही निरोगता का, प्रतिभाशीलता का चिह्न है ।

(५) **सूर्य वेधन प्राणायाम**—ध्यान मुद्रा में बैठा जाए । कपड़े शरीर पर कम-से-कम रहें । मुख पूर्व की ओर हो, समय अरुणोदय का । ध्यान किया जाए कि आत्मसत्ता शरीर में से निकलकर सीधे सूर्यलोक तक पहुँच रही है । जिस प्रकार सुई में पिरोया हुआ धागा कपड़े से होकर जाता है, जलती अग्नि में से छड़ आर-पार निकल जाती है, उसी प्रकार आत्मचेतना प्रातःकालीन सूर्य का वेधन करती हुई आर-पार जा रही है । सूर्य ऊर्जा से अपनी चेतना भर रही है । दायीं नासिका से खींचा श्वास अंदर तक जाकर सूर्य चक्र को आंदोलित-उत्तेजित कर रहा है । ओजस्, तेजस्, वर्चस्, की बड़ी मात्रा अपने में धारण करके वापस बाईं नासिका से सारे कल्मष निकल रहे हैं । पहले की अपेक्षा अब अपने में प्राण ऊर्जा की मात्रा भी अधिक बढ़ गई है, जो प्रतिभा परिवर्धन के रूप में अनुभव में आती है । क्रिया को गौण व भावना को प्रधान मानते हुए यह अभ्यास नियमित रूप से किया जाए तो निश्चित ही फलदायी होता है ।

(६) **चुंबक स्पर्श**—चुंबक का चिकित्सा में बड़ा योगदान माना गया है । एक्युपंक्चर, एक्युप्रेशर, शरीर के सूक्ष्म संस्थानों को मुद्रा बंध द्वारा प्रभावित करना एवं चुंबक चिकित्सा में अद्‌भुत साम्य है । हमारी धरती एक विराट चुंबक है व निश्चित मात्रा में प्राण उत्तरी ध्रुव से खींचती और अनावश्यक कल्मषों को दक्षिण ध्रुव से फेंक देती है । चुंबक स्पर्श में भी यही सिद्धांत प्रयुक्त होता है । लौह चुंबक का सहज क्षमता वाला पिंड लेकर धीरे-धीरे मस्तिष्क, रीढ़ और हृदय पर बाईं से दाईं ओर गोलाई में घुमाया जाता है । गति धीमी रहे । कंठ से लेकर नाभि छिद्रों के ऊपर होते हुए जननेन्द्रियों तक उस चुंबक को पहुँचाया जाए । स्पर्श कराते घुमाने के उपरांत उसे धो दिया जाए; ताकि उसके साथ कोई प्रभाव न जुड़ा रहे । चुंबक से प्रभावित जल तथा विद्युत् चुंबक का प्रयोग भी इसी क्रम में किया जाता है । किस कमी के लिए, किस रूप

में, किस प्रकार प्रयोग किया जाना है ? उसका निर्धारण विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है ।

(७) **प्राणवानों का सान्निध्य**—शक्तिपात की तांत्रिक क्रिया तो करने-कराने में कठिन है व जोखिम भरी भी; किन्तु यह सरल है कि किन्हीं वरिष्ठों—प्राण चेतना संपन्न व्यक्तियों के यथा संभव निकट पहुँचने का प्रयत्न किया जाए । चरण स्पर्श जैसे समीपता वाले उपक्रमों से लाभ उठाया जाए । अप्रत्यक्ष रूप से यह ध्यान किया जा सकता है कि हनुमान्, भगीरथ जैसे किसी प्राणवान् के साथ अपनी भावनात्मक एकता बन रही है और पारस्परिक आदान-प्रदान का सिलसिला चल रहा है । साबुन जिस प्रकार अपनी सफेदी प्रदान करता है और कपड़े का मैल हटा देता है, उसी प्रकार की भावना इस सघन संपर्क की ध्यान धारणा में की जा सकती है । दृश्य चित्र व उन महामानवों के कर्त्तव्यों के गुणों का चिंतन भी उसमें सहायक होता है । इस आधार पर भी प्राण चेतना बढ़ती है । उसी प्रकार जिस प्रकार माँ के स्तनपान से बालक एवं गुरु की शक्ति से शिष्य लाभान्वित होता है ।

(८) **नाद योग**—वाद्य यंत्रों और उनकी ध्वनि लहरियों के अपने-अपने प्रभाव हैं । उन्हें कोलाहल रहित स्थान में सुनने का अभ्यास भी प्रतिभा परिवर्धन में सहायक होता है । यह कार्य, शब्द शक्ति (जो चेतना का ईंधन है), के श्रवण से, अंतः के ऊर्जा केंद्रों को उत्तेजित व जगाकर संभव है । टेपरिकार्डर से संगीत सुनकर भी यह कार्य संभव है एवं स्वयं उच्चारित मंत्रों या संगीत पर ध्यान लगाकर भी । अपने लिए उपयुक्त संगीत का चयन भी इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा ही निर्धारित करना चाहिए । एक ही वाद्य व समयानुकूल राग का चयन किया जाना चाहिए । यह श्रवण आरंभ में पाँच से दस मिनट तक ही किया जाए । क्रमशः अभ्यास के साथ बढ़ाया जा सकता है । इस विषय पर विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के लिए धुनों का चयन कर संगीत कैसेट बनाने का कार्य शांतिकुंज द्वारा संपन्न हो रहा है ।

(६) **प्रायश्चित**—व्यभिचार, छल, धन अपहरण जैसे दुष्कर्मों से भी प्राणशक्ति क्षीण होती है और प्रतिभा का अनुपात घट जाता है । इसके लिए दुष्कर्मों के अनुरूप प्रायश्चित किया जाए । क्रिश्चियन धर्म में 'कन्फेशन' की बड़ी महत्ता बताई गई है । दुष्कर्मों की भरपाई कर सकने जैसे कोई सत्कर्म किए जाएँ । चांद्रायण जैसे व्रत उपवास भी इस भार को उतारने में सहायक होते हैं । कौन किन दोषों के बदले क्या प्रायश्चित करे, इसके लिए गुरु सत्ता जैसे विशेषज्ञों से अपनी पूरी बात कहकर काफी हलकापन आ जाता है व आगे कुछ नया करने की दिशा मिलती है । प्रायश्चित धुलाई की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी करता है । प्रतिभा संवर्धन हेतु अंतरंग की धुलाई जरूरी भी है ।

(१०) **अंकुरों का कल्क एवं वनौषधि सेवन**—अन्न, धान्यों एवं जड़ी-बूटी वनस्पतियों के अपने-अपने प्रभाव हैं । वे जब अंकुरित स्थिति में फूटते हैं तब उनमें अभिनव एवं अतिरिक्त गुण होता है जो अपनी आवश्यकता के अनुकूल निर्धारित हो, उसके सात गमले एक-एक दिन के अंतर से उगाए जाएँ । सातवें दिन अंकुरों को पीसकर उसका कल्क तीन माशे व पानी एक तोला लेकर छान लें, इसे प्रातःकाल खाली पेट मधु या उचित अनुपान के साथ लें । ये टॉनिक तेजस् की अभिवृद्धि, मेधावृद्धि, जीवनी शक्ति संवर्धन में सहायक होते हैं । इसी प्रकार हरी जड़ी-बूटियों या उन ओषधियों के सूखे चूर्णों का भी कल्क बनाकर ग्रहण किया जा सकता है । निर्धारण विशेषज्ञ करते हैं । किन्हीं स्थितियों में वाष्पीभूत रूप में अग्निहोत्र प्रक्रिया से नासिका मार्ग द्वारा ग्रहण किए जाने का भी प्रावधान है ।

यहाँ संक्षेप में प्रतिभा संवर्धन के निर्धारित दस उपचारों की चर्चा की गई है । विस्तार से इन्हें शिविरों में सम्मिलित होने पर, प्रत्यक्ष शांतिकुंज आने पर समझाया जाता रहता है ।

❑

मुद्रकः युग निर्माण योजना प्रेस,मथुरा